उत्थान

योगी महाजन

उत्थान

(अंग्रेजी पुस्तक 'द ॲसेंट' का अनुवाद)

योगी महाजन

हिन्दी अनुवाद
(सी.एल.पटेल)

लेखक के विषय में कुछ शब्द

आत्मा प्रेरित करती है और माँ (सरस्वती) की कृपा से शब्द जुड़ते चले जाते हैं। श्रीमाताजी निर्मला देवी ही वे माँ हैं जिन्होंने इस युग में सत्य को पाने की एक सरल युक्ति, 'सहजयोग', का वरदान मानव जाति को दिया है।

परमात्मा को खोजने वाले हर व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा क्षण आता है जब वह अपने अहं और संस्कारों के भुलावे से ऊपर उठकर अपनी खोज का विश्लेषण करता है और दोबारा फिर सत्य की खोज में निकलता है। इसी सत्य का साक्षात्कार तथा अपनी आत्मा की उपस्थिति की अनुभूति ही सहजयोग का संदेश है। इससे हम अपने अन्दर छिपी हुई चक्रों, नाड़ियों की सूक्ष्म प्रणाली जिससे हमारा शरीर, मन, बुद्धि सभी कार्यशील हैं, की दशा और कार्यों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके फलस्वरूप यह पहली बार हुआ है कि हम उन सूक्ष्म तत्वों, उनकी रचना के चमत्कारिक उत्क्रांति, उनके अनेक क्रमचय जोड़ को समझ सके हैं जो मानव अवचेत मन का निर्माण तथा पोषण करते हैं तथा उनके निर्माण प्रक्रिया की सूक्ष्म जाँच कर सकते हैं।

आत्मा को अनुभव (आत्मसाक्षात्कार) करने की शक्ति हमें जन्म से ही मिली हुई है परन्तु इसके प्रकटीकरण के लिए हमारे भीतर तीव्र इच्छा तथा सही मार्गदर्शन चाहिए। जब हमारे भीतर इस शक्ति को पाने की तीव्र इच्छा होती है, तब श्रीमाताजी स्वयं मार्गदर्शक बनती हैं और हमें सहज ही अपनी आत्मा का अनुभव होने लगता है। मानव–जीवन का गहरा अर्थ इतना सरल है, कि उसे बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। इसे जानने के लिए हमें बुद्धि के परे जाकर सरल बनना होता है। बुद्धि से हम सिर्फ विश्लेषण कर सकते हैं या विचार धारणा बना सकते हैं परन्तु हम किसी जीवित प्राणी का निर्माण नहीं कर सकते। जीवित कार्य सिर्फ प्रकृति का है। हमारे शरीर के आंतरिक गहराई में एक हिरण्यवर्णा देवी निवास करती है। वही सारे जीवित कार्य करती है, शायद वही मुख्य स्रोत है।

अत: प्रकृति और प्यार ही हमें वहाँ तक ठीक–ठाक ले जा सकते हैं क्योंकि वे बुद्धि से भी सूक्ष्मतर होते हैं। सूक्ष्म को अनुभव करने के लिए साधन का भी सूक्ष्म होना जरूरी है। मन के प्रक्षेपण से भी सूक्ष्म, प्रकृति के साथ संतुलन तथा संगति से

एक सूक्ष्मता का जन्म होता है। यह हमारे आँखों को देखने के लिए खोलती हैं कि क्या है और क्या हमारे साथ अभी तक सदा रहा है। जब हमारे अन्दर शांति होती है, तब हम नदी के बहाव में एक सूक्ष्म संगीत सुनते हैं। प्यासे की प्यास बुझाना ही इसकी नियति है; बदले में इसे कुछ नहीं चाहिए। इसका स्वभाव है बहते जाना और सहजरूप से समुद्र से मिलना (उसी तरह आदि माँ का प्यार बहता रहता है, चैतन्य बहता रहता है, क्षमाशीलता बहती रहती है जिससे सारी सृष्टि चल रही है)।

अब सबय आ गया है जब अनेक जन्मों से सब्र करने वाले सत्य साधकों की इच्छायें पूर्ति होंगी। सहजयोग, जो एक जीवित पद्धति है, से यह अभिनव आविष्कार संभव हुआ है। यह प्रक्रिया सहज, स्वाभाविक, समग्र है तथा पूर्व अवतारों के तत्वों को शामिल कर समग्र करती है।

आज सामूहिक प्रकंपनात्मक चेतना (collective vibratory awareness) के आविष्कार का यह समाचार पूरे विश्व में जोर पकड़ता जा रहा है (इस आविष्कार से प्रकृति के एक अनूठे तरीके–सहजयोग–द्वारा मानव जाति को सामूहिक चेतना के आयाम में पहुँचाना है, जिससे मानव जाति उस चेतना से परिचित हो जाए जिसके द्वारा सारी सृष्टि और मानव हृदय भी चलता है)। जैसा कि भविष्यवाणी की गई है–यह महायोग है, नक्षत्र प्लूटो द्वारा लाई एक बदलाव की शक्ति है, जो मानव जाति को असत्य से सत्य की ओर ले जायेगी।

जिनमें सत्य के साथ तथा सत्य के लिए अपने आप से प्रश्न करने की हिम्मत हो, परमात्मा कृपा से उनकी इच्छायें पूर्ण हों।

योगी महाजन

टिप – 'उत्थान' के इस संस्करण में अंग्रेजी पुस्तक 'द ऍसेंट' के अंतिम संस्करण (२००६ में पुणे में मुद्रित) के अनुसार अनुवाद संशोधन किया गया है। इसके साथ ही साथ उत्थान के पहले के संस्करण के गूढ़ शब्दों तथा वाक्यों को सर्वसाधारण साधकों की समझ के लायक बनाने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1	जिन खोजा तिन पाइयाँ	7
2	हिरण्यवर्णा देवी	15
3	आध्यात्मिक उत्थान की तीन नाड़ियाँ	19
4	सूक्ष्म–ब्रह्मांड	29
5	आधारभूत बल	34
6	सौन्दर्य–बोध का विकास	44
7	सद्‌गुण–धर्म और कल्याण	55
8	सामूहिकता	61
9	भवसागर	65
10	अनहद–नाद (हृदय चक्र)	77
11	सत्य का उपकरण	93
12	प्रवेश द्वार	101
13	परमात्मा से नित्य निरंतर योग	113
14	दैवी–प्रकंपन	119
15	ध्यान	126
16	'माँ' की ओर देखो	134
17	उपसंहार	138
	कुछ पारिभाषिक शब्द	151

ज्ञान की दात्री परम पूज्य श्रीमाताजी
निर्मला देवी के चरणों में समर्पित

न मंन्त्रं नो यंत्रं तदापि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्यानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्ः।।

1
जिन खोजा तिन पाइयाँ

प्रत्येक 'अंग' यह जानना चाहता है कि वह किसका हिस्सा है और वह अपने संपूर्ण की खोज करता है (क्योंकि अपनी पूर्णता को पाए बिना उसे अपने अस्तित्व की स्थिरता या भय से सुरक्षा का आधार दिखाई नहीं देता है और ऐसी स्थिति में वह व्याकुल रहता है)। वह प्रेम की शक्ति के द्वारा ही अमर संपूर्णता से जुड़ा रहता है, और उस की ओर उन्मुख होता है, जहाँ से उसका उदग्म या जन्म हुआ होता है ('जन्म' का वास्तविक अर्थ अपूर्ण का पूर्ण से अलग होना है। फिर यही अपूर्ण अंग सचेत होकर पुनः पूर्णता की खोज करता है ताकि उसमें मिलकर अपनी पूर्णता को, अपनी जानकारी, होश-हवास में व्यक्त कर सके और अपने अस्तित्व की अमरता, निरंतरता के प्रति संतुष्ट हो सके, जैसे बूँद समुद्र से मिलकर पूर्ण हो जाती है)।

परमात्मा (संपूर्ण) की खोज करना मानव का स्वभाव है (क्योंकि वह परमात्मा का ही अंग-प्रत्यंग है परन्तु जन्म के बाद वह इस बात को भूल जाता है और इसलिए वह बार-बार जन्म लेकर परमेश्वर की खोज करता है) परन्तु कौतूहलवश उसकी खोज की तीव्रता इतनी गहराई में चली जाती है कि वह सूक्ष्मता में उतर जाता है। उस दशा में उसके अंदर बुद्ध जैसे महात्मा का जन्म होता है, जो परमात्मा को जानने और पाने के लिए पहले अपनी आत्मा को जानने को आकुल हो सब कुछ त्याग देता है तथा निरंतर प्रयत्नशील रहता है। स्थूल रूप में उसके इस कौतूहलवश की गई खोज या तो उसे एक सच्चे वैज्ञानिक की स्थिति में पहुँचा देती है जिससे वह 'सत्य' के प्रति निष्ठावान् हो जाता है या एक यात्री की तरह दर-दर भटकाती है। उसकी यही खोज सूक्ष्म

रूप में एक सुन्दर रूप धारण कर लेती है, जो कलाकार की कला में उत्कृष्टता और सौंदर्य भर देती है। बुद्धिमान् व्यक्ति की समझ-बूझ में भी उसकी खोज प्रकाशित होती है, परन्तु जो लोग अपनी खोज के प्रति सजग नहीं होते, वे भी अनजाने में या अंधेरे में खोजते ही रहते हैं। नशे में भी व्यक्ति खोजता है, परन्तु वह नहीं जानता कि वह क्या खोज रहा है (अत: हमें अपनी खोज के प्रति सजग और सतर्क रहना चाहिए)।

हम परमेश्वर को खोजने का प्रयास कब करते हैं? जब हमारे अंत:करण से प्रेरणा मिलती है, तभी हम खोजी (साधक) बनते हैं। इसके पहले हम उस अबोध बालक के समान होते हैं, जो माता-पिता से ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि आकाश के तारे क्या हैं? सूर्य क्या है? चंद्रमा क्या है? परन्तु हमारे अंदर से निकली हुई जिज्ञासा (तीव्र इच्छा) हमारे प्रश्नों को नया रूप दे देती है और इससे हम अंतर्मुखी हो जाते हैं तथा अपने ही भीतर खोजने के लिए प्रेरित हो जाते हैं (तब हमारे प्रश्न मौलिक होते हैं)। हम क्या हैं? यहाँ किसलिए हैं? दूसरों से हमारा क्या संबंध है? आदि आदि।

मनुष्य की बुद्धि के अनेक तर्क-वितर्कों और वाद-विवादों को जन्म दिया है। उनमें से कुछ को हम अपना लेते हैं और कुछ को त्याग देते हैं। कुछ पर हम प्रयोग करते हैं तथा कुछ का हम अपने जीवन में उपयोग करते हैं। चाहे जो भी हो, हम पुन: उस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं, जो हमारे प्रश्नों या हमारी शंकाओं का पूरा-पूरा समाधान नहीं दे पाता है। ये महज, हमारी मानसिक अटकलबाजियाँ, सांस्कारिक प्रतिक्रियाएँ या मन की धारणाएँ हैं, जिन्हें हम 'अहंकार' और 'प्रतिअंहकार' कह सकते हैं। अहंकार और प्रतिअहंकार के मार्ग (Channels) से ही हमारा मस्तिष्क सब प्रकार की सूचनाओं, जानकारियों या आँकड़ों (data) को प्रवाहित करता है। इस प्रकार मस्तिष्क कई नतीजों तक पहुँचता है, जो एक खास बात को ही बता पाता है। यदि इन आँकड़ों का

आवागमन, एक संतुलित केन्द्र द्वारा निष्पक्ष रूप से जारी हो रहा हो, तो साक्षी-स्वरूप (witness) होकर मनुष्य उन नतीजों तक पहुँच सकता है, जिनके जरिये उसका आध्यात्मिक उत्थान संभव हो सकेगा। परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता और दुर्भाग्य से मनुष्य अपने विचारों के मायाजाल में ही फँस कर रह जाता है।

हमारे अंदर एक सामूहिक चेतना (Collective Consciousness) की स्थिति होती है, जिसमें विचारों के प्रवाह का सिलसिला जारी रहता है, जहाँ हमारे मस्तिष्क में वापस भूतकाल की सामूहिक अवचेतना (Collective Sub-Consciousness) तथा भविष्य की सामूहिक अतिचेतना (Collective Supraconsciousness) से विचारों की बाढ़ सी आने लगती है। इन दोनों किस्मों की मानसिक-गतियों (भूत और भविष्य की) से हमें कोई लाभ नहीं होता और हमारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। ये गतियाँ (Collective Consciousness) एक रेखीय दिशा की ओर ले जाती हैं और वहाँ पहुँच कर पुनः वापस लौट आती हैं, जहाँ से और आगे नहीं जाया जा सकता। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग कुछ और ही है, वह है ''कुंडलाकार गति''। मनुष्य इस गति से भूत और भविष्य के विचारों में नहीं उलझता है और वह वर्तमान में रह कर सामूहिक अचेतन से अपने आध्यात्मिक उत्थान (Ascent) की आधार-सामग्री प्राप्त कर लेता है। इससे इसके विकास का मार्ग खुलता है।

मानव को अहंकार और प्रतिअहंकार के जरिये प्राप्त आधार-सामग्री केवल एक संकल्पना मात्र ही होती है। संकल्पना कभी भी वास्तविकता नहीं होती है। परन्तु अहं और प्रत्यहं (ego and superego) में उलझे व्यक्ति की समझ में यह नहीं आता है कि तर्क-वितर्क या वाद-विवाद में सत्य (सार) को नहीं पाया जा सकता है। इसके विपरीत वह (व्यक्ति) अपने अहं-प्रत्यहं- जनित एक विशेष सिद्धांत को दृढ़ता से पकड़े रहता है और उसी को महत्व देता है। वह दूसरों को अपनी बात मनवाने का भरसक प्रयत्न करता

है- कि उसे जो परिणाम (result) प्राप्त हुआ है, वही एक अमिट सत्य है। आज की दुनिया में ऐसी ही स्थिति बन गई है, जिसमें ऐसे अनेक अहंकारी और प्रतिअहंकारी एकत्र होकर अपनी-अपनी बात मनवाने का उपक्रम करते हैं। आज विश्व में अधिकतर ऐसी दशा उत्पन्न हो गई है जिसके फलस्वरूप केवल रूढ़िवादिता तथा आक्रामकता ही पनपी है।

कारण (वृक्ष) को परिणाम (फल) द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता। हमें उसकी जड़ तक जाना होगा। यदि हम विश्व-शांति चाहते हैं तो सबसे पहले हमें अपने भीतर शांति लानी चाहिए। सांसारिक समस्याओं का समाधान उन सामूहिक अवचेतना और अधिचेतना के क्षेत्र से नहीं आ सकता, जहाँ पहले से ही अशांति हो और जहाँ अहंकार व प्रतिअहंकार का राज्य हो। यदि कहीं कोई समाधान है तो वह उस सामूहिक अचेतन के क्षेत्र से आता है, जहाँ शांति का साम्राज्य निरंतर छाया रहता है। जब हमारी अनुभवजन्य चेतना इस क्षेत्र (सामूहिक चेतना) में प्रवेश करती है, तब हमारी सब सैद्धान्तिक धारणाओं का असर फीका पड़ जाता है। फिर हम किसी एक विशेष सिद्धांत से चिपके नहीं रहते। बौद्धिक विश्लेषण के बदले हम सब सिद्धांतो का संश्लेषण (synthesis) करके संपूर्णता या समग्रता (integration) को समझते हैं। एक लघु बूँद (मानव मस्तिष्क) महासागर बन जाती है और उसकी दृष्टि इतनी विशाल हो जाती है कि वह महासागर के असंख्य पहलुओं को देख सकती है। उसमें अनंतता के ज्ञान का उदय होता है और उसकी बुद्धि प्रकाशित हो जाती है। इस प्रकाशित बुद्धि से मनुष्य उस नतीजे पर पहुँच जाता है, जिससे उसे एकता में अनेकता (तथा अनेकता में एकता) दिखाई देती है। सब प्रकार के भौतिक अनुभवों की सच्चाई के पार्श्व में सर्वोच्च सत्ता तथा प्रकृति के सभी नियमों के पीछे एक ही सर्वशक्तिमान परमात्मा का नियम दिखाई देता है। इस तत्त्व ज्ञान की धारा केवल उसी के मस्तिष्क में बहती है

जो सामूहिक चेतना की प्रमुख धारा (mains) से जुड़ जाता है। अत: हम ऐसे प्रकाशित मस्तिष्क वाले महानुभावों को ढूँढने का प्रयास करें। यदि हम उन्हें नहीं पा सकते तो क्यों न हम अपने आपको सामूहिक चेतना से जोड़ लें। इस प्रकार की तीव्र इच्छा सच्चे साधक को प्रेरित करती है। परन्तु उसकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि सामूहिक-अचेतन (Collective Unconscious) से अपनी चेतना का संयोग किस विधि से करे? किस मार्ग का अनुसरण करे? बहुत सी विभिन्नताएँ हैं। इनमें से किसका चुनाव करें, जो उसके लिए उपयुक्त हो। अत: व्यक्ति को शुरु से ही प्रयत्न करना चाहिए, परखना चाहिए कि कौन सा मार्ग उसके लिए लाभदायक है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि जो रास्ता शुरु-शुरु में सही लगता है, बाद में वह काम का न हो। ऐसी हालत में, उसे वहीं छोड़कर दूसरा मार्ग चुनने में कोई हर्ज नहीं (जब तक उपयुक्त मार्ग न मिले तब तक प्रयत्न जारी रखना चाहिए)। यह तर्क तो अच्छा लगता है, परन्तु व्यवहार में खरा नहीं उतरता। बहुत से धार्मिक लगने वाले लोग अच्छी बातों की शिक्षा देते हैं, परन्तु स्वयं उनके विपरीत चलते हैं। एक समय की बात है कि दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी ईसाई धर्म से बड़े प्रभावित हुए। उन्हें लगा कि जातिभेद की समस्या का इलाज ईसाई धर्म (Christianity) में है। अत: बड़ी आशा से वे गिरिजाघर में गए। वहाँ उनसे कहा गया कि वे उस जगह बैठें, जहाँ काले लोगों के बैठने की जगह है। इस पर वे तुरंत बाहर निकल आए और फिर वहाँ कभी नहीं गए। उन्हें लगा कि धर्म में आस्था रखने वाले लोग, जो प्रेम और करुणा की दुहाई देते हैं, वे एक छोटा सा बहाना बनाकर औरों का गला किस प्रकार घोंटते हैं। अत: परमात्मा को खोजने वाले को तो भीतर से सच्चा होना चाहिए, तभी वह सच्चे मार्ग की पहचान कर सकता है।

हम जो कुछ भी ढूँढते हैं, उसे हम अवश्य पाते हैं। परन्तु जो हम पाते हैं,

वह सुखद् हो सकता है, परन्तु कभी-कभी दुखदायी भी हो सकता है। ऐसी किसी भी हालत में, हमारी खोज को संतुष्टि नहीं मिलती, जैसे कि एक बालक एक खिलौने से खेलने के बाद दूसरे के लिए लालायित हो जाता है। अत: स्थूलता में ढूँढना हमें उथलेपन में रखता है और हमारी खोज का अंत नहीं होता। केवल गहराई (या सूक्ष्मता) में जाने से हमें अमृत तत्त्व मिल सकता है। सच्चे मोती की प्राप्ति के लिए हमें उस अज्ञात नीले समुद्र की गहराइयों में उतरना होगा। परन्तु किसी प्रेरणा (या आश्वासन) के बिना कोई ऐसी मुसीबत क्यों मोल लेगा, जिसमें जान का खतरा हो। प्रेरणा तो हमारे अंतर्मन की उस गहराई से आती है, जहाँ शान्ति का साम्राज्य होता है (और जहाँ कोई खतरा या भय नहीं होता)। और जब मनुष्य स्वयं अपने अंतर्मन की गहराई में पहुँच जाता है, तब वह देवता बन जाता है। तब क्षमता गतिशील हो जाती है; बीज, वृक्ष बन जाता है। यह आश्चर्यों का आश्चर्य अर्थात् सबसे बड़ा आश्चर्य है ('आश्चर्य' को मनुष्य अपने तर्क से नहीं समझ सकता)। जिसने मनुष्य का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया; सृष्टि के प्रारंभ से ही उसके भीतर खोज की चिंगारी जागी और उसकी खोज की प्रवृत्ति जिज्ञासा में बदल गई। जो व्यक्ति सतही बातों की जानकारी में अपना समय लगाते हैं, वे केवल उथले-उथले चलते हैं। शुद्ध-इच्छा से जो अपने उद्गम की गहराई में उतरते हैं, और ईमानदारी से प्रयास करते हैं, केवल वे ही साधकजन, उस परम प्रेममयी हिरण्यवर्णा देवी माँ का, जो अपने ही भीतर विद्यमान है, दर्शन कर सकते हैं। उस 'दिव्य माँ' का प्रेम और वात्सल्य से भरा स्पर्श हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व को मोहित कर देता है और आनंद से परिपूर्ण कर देता है।

वास्तव में, यह ''आश्चर्यों का आश्चर्य'' है और यह हर इंसान के भीतर विद्यमान है। ज्ञानीजन उसका गुणगान करते हैं, संतजन श्रद्धा, भक्ति और विनम्रता से उसका भजन करते हैं तथा अपने आपको गौरवान्वित करते

हैं तथा धन्य-धन्य और कृत-कृत्य हो जाते हैं। तो फिर उसे पाना क्यों कठिन है? वास्तव में, हमारी खोज, उथलेपन तक ही सीमित रह जाती है इसीलिए कठिनाइयाँ आती हैं। वास्तविक हीरे की खोज करना छोड़कर हम टूटे हुए काँच के टुकड़ों की ओर खिंचे चले जाते हैं, क्षणिक और नाशवान वस्तु की खोज में खो जाते हैं और उस भंडार को खोजना भूल जाते हैं, जो अमर, अनादि, अनंत तथा आनंदमय है।

समय आ गया है कि हम थोड़ा सिंहवलोकन कर अपनी प्राथमिकताओं की जाँच करें और अपनी खोज को उचित दिशा दें। आइये, परीक्षण करें कि अस्थाई लाभ, जिसका कोई स्थाई परिणाम न हो, क्या है और अस्थाई नुकसान परन्तु जिसका स्थाई लाभ है, क्या है।

भौतिक लाभ न होते हुए भी हमें अपने अन्दर की ''दिव्य माँ'' को कैसे खुश रखना है? इस पर कोई समझौता नहीं हो सकता क्योंकि ''दिव्य माँ'' सच के सिवा कुछ भी नहीं जानती है। वह मनुष्य की तर्क वितर्क या फुसफुसाहट को नहीं सुनती है, वह सिर्फ अपने या उनसे उत्पन्न हुए निर्वाज्य प्यार को ही जानती है। वह अपने द्वारा की गई सृष्टि की दैविक संगीत का आनन्द लेती हैं और जब संगीत बन्द होता है तो वह सो जाती हैं। इस तरह हजारों सालों से वे सो रही हैं परन्तु अब उन्हें जगाने का समय आ गया है।

अपने आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त करने की जिम्मेदारी हमारे पर है, क्योंकि सृष्टि के शुरु से ही परमात्मा ने इसे ऐसा ही नियमित किया है। आइये, अपनी खोज को इस तरह ताराशें कि वह दिव्य माँ के आंतरिक मंदिर की दिशा में ले जावे क्योंकि जैसे गहराई से हम खोज करेंगे तभी हम अपनी दिव्य आत्मा को पायेंगे।

इसी तथ्य को संत कबीर ने कहा है- 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ, तिन बपुरा क्या पाइयाँ, जो रहा किनारे बैठ।'

हिरण्यवर्णा देवी

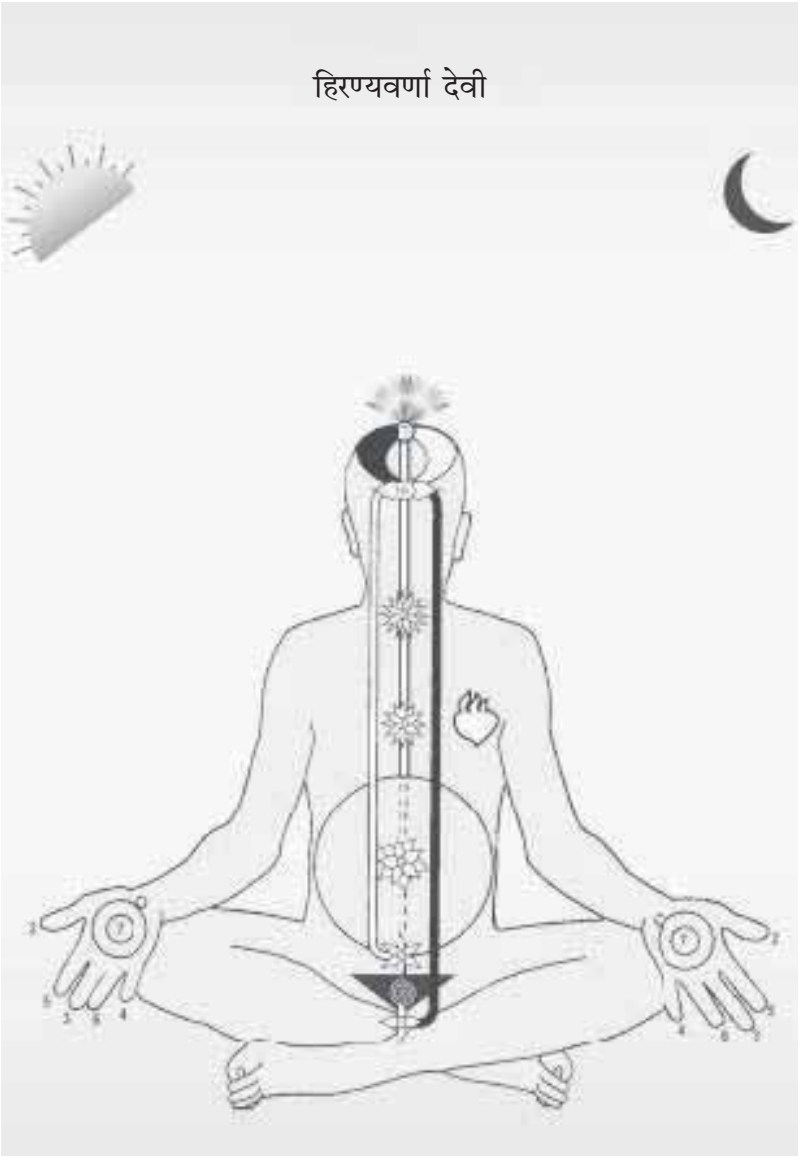

चित्र संख्या - 1

2
हिरण्यवर्णा देवी

आधुनिक युग में हमने ऐसी मानसिकता की सुदृढ़ परत बना ली है, जिसके कारण जीवन तथा उसका पोषण करने वाली प्रकृति की जड़ से हमारा संपर्क टूट-सा गया है। इसके एक ओर तो हमारी मानसिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति के बीच चौड़ी खाई बन गई है तो दूसरी ओर हमारे जीवन के आधार, सामान्य समझ-बूझ और गतिशील वास्तविकता के पारस्परिक संबंधों में बड़ा अंतर आ गया है।

हमारी कोषिकाओं के मूल में आत्मा का संगठन है जो अपने आप पैदा होता है तथा अपने आप विकसित होता है (किसी बाहरी ताकत का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं है)। हर कोशिका (cell) में चेतन शक्ति है जिससे अपने आप सब कुछ नियंत्रित होता है। इसी मे वृद्धि, संतुलन तथा संरक्षण होता है। हर जीवित कोशिका में स्वाभाविक क्षमता होती है, जिससे वह अपने निर्धारित नियम को बदले बिना हमेशा अपना नवीकरण करती है। पुरानी से नई बनाती है, स्वस्थ करती है; और अपने ढाँचे को पुनर्निमित करती है। प्यार ही, संयोजन ही वह शक्ति है जो सभी जीवित कोषिकाओं को नियंत्रित रखती है।

अब हमारे समक्ष एक स्पष्ट प्रश्न उठता है कि यह सब कैसे होता है? बीज किस प्रकार उगता है? अंडे के अन्दर अंग कैसे बनते हैं? घाव कैसे भरता है? भ्रूण को छोड़कर शरीर विजातीय द्रव्यों को कैसे बाहर निकाल फेंकता है? यह चेतना (ज्ञान) कहाँ स्थित है? शायद यह रहस्य उस हिरण्यवर्णा देवी की कार्य करने की शक्ति में निहित है।

जो भी हो, हम इस रहस्य को जानने के लिए कोई दबाव नहीं डाल सकते। उसका नियम सभी प्रकार के आयामों से परे है। समय, स्थान, कारण और परिणाम तथा आधुनिक विज्ञान से परे है। जहाँ, आधुनिक विज्ञान पदार्थ के अध्ययन और विकास का ज्ञान है, वही शक्ति ही पदार्थ की उत्पति का मूल कारण है। जब हमारा अनुसंधान, सब प्रकार की आक्रामकता और विश्लेषण से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है, तब हमें उसका सूक्ष्म आभास होता है और तब देवी माँ, हमारे सामने प्रचुर मात्रा में अपने प्रेम का कोष रख देती हैं, जिससे हमारे जन्म-जन्मांतरों की तृष्णा अत्यंत मधुर अमृत से संतृप्त हो जाती है।

वही हमारी एकमात्र व्यक्तिगत माँ है और हमारे भीतर 'कुण्डलिनी' के रूप में विद्यमान है, तथा हमारा पोषण करती है। वह स्वयं करुणामयी है, जो हमें शांति देती है; हमारा पोषण करती है, तथा हमसे प्रेम करती है। वह हमारी रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में त्रिकोणाकार हड्डी में विश्राम करती है और उस अवसर की प्रतीक्षा में है जब किसी आत्मज्ञानी द्वारा समय आने पर जाग्रत की जाए। 'वह आपकी अपनी व्यक्तिगत माँ है। वह आपको कैसे नुकसान पहुँचाएगी? आपके बारे में वह सब कुछ जानती है और बड़ी उत्सुकता से वह आपको दुबारा जन्म देने की प्रतीक्षा में है।' - इस प्रकार से श्री माताजी निर्मला देवी उस कुण्डलिनी शक्ति के विषय में कहती हैं।

'महादेवी कुण्डलिनी, बिल्कुल जगज्जननी जगदंबा के समान हैं और आत्मा की महानता को सुषोभित करती हैं .....।' (चित्र संख्या 1 देखें)

ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय के 14 वें श्लोक में संत ज्ञानेश्वर (1275-1297A.D.) कहते हैं कि - 'वह इस प्रकार दिखाई देती हैं, जैसे कि जीवन के साँस की छवि में ढ़ाली हुई हों और सुनहरी पीली साड़ी से ढँकी हों। परन्तु उसे त्याग कर अपनी झलक इस प्रकार दिखाती हैं, जैसे हवा के झोंको से चिराग

की लौ, जो पलक झपकते ही बुझ जाती है या आसमान में बिजली की चमक की तरह क्षणमात्र के लिये दिखाई देती है और अदृश्य हो जाती है।'

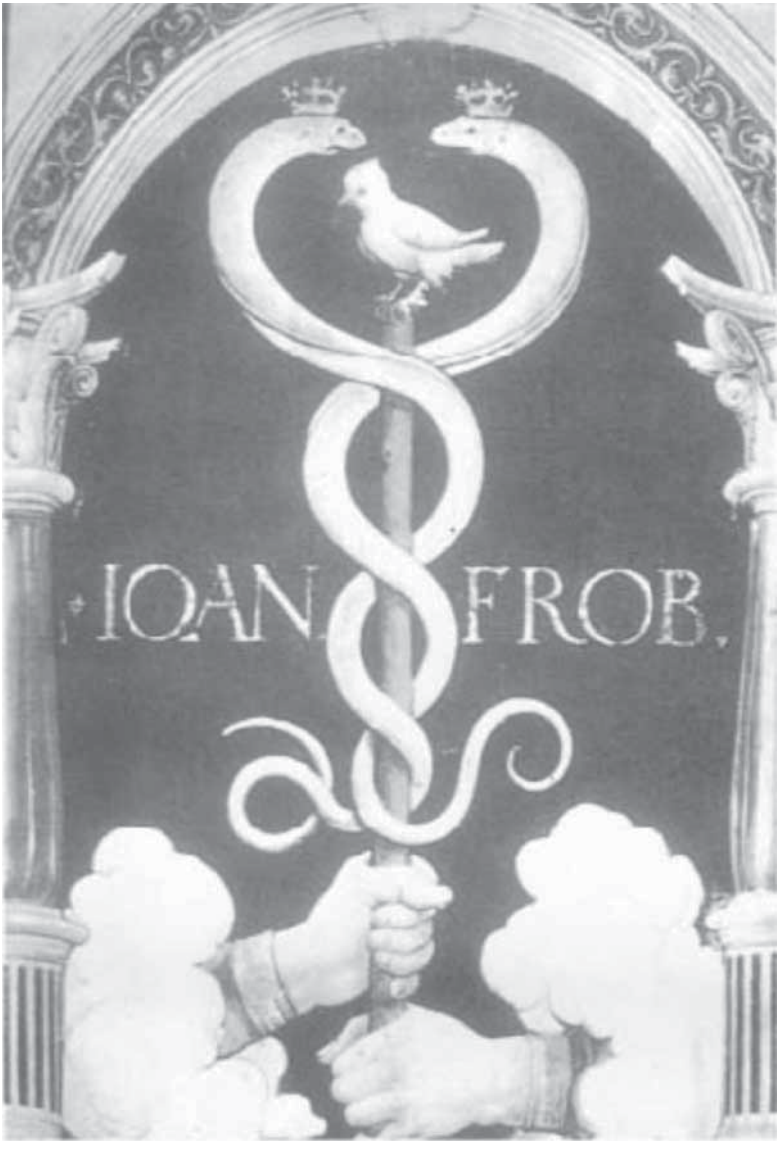

चित्र संख्या - 2 - कुण्डलिनी-पश्चिमी पुराणो में

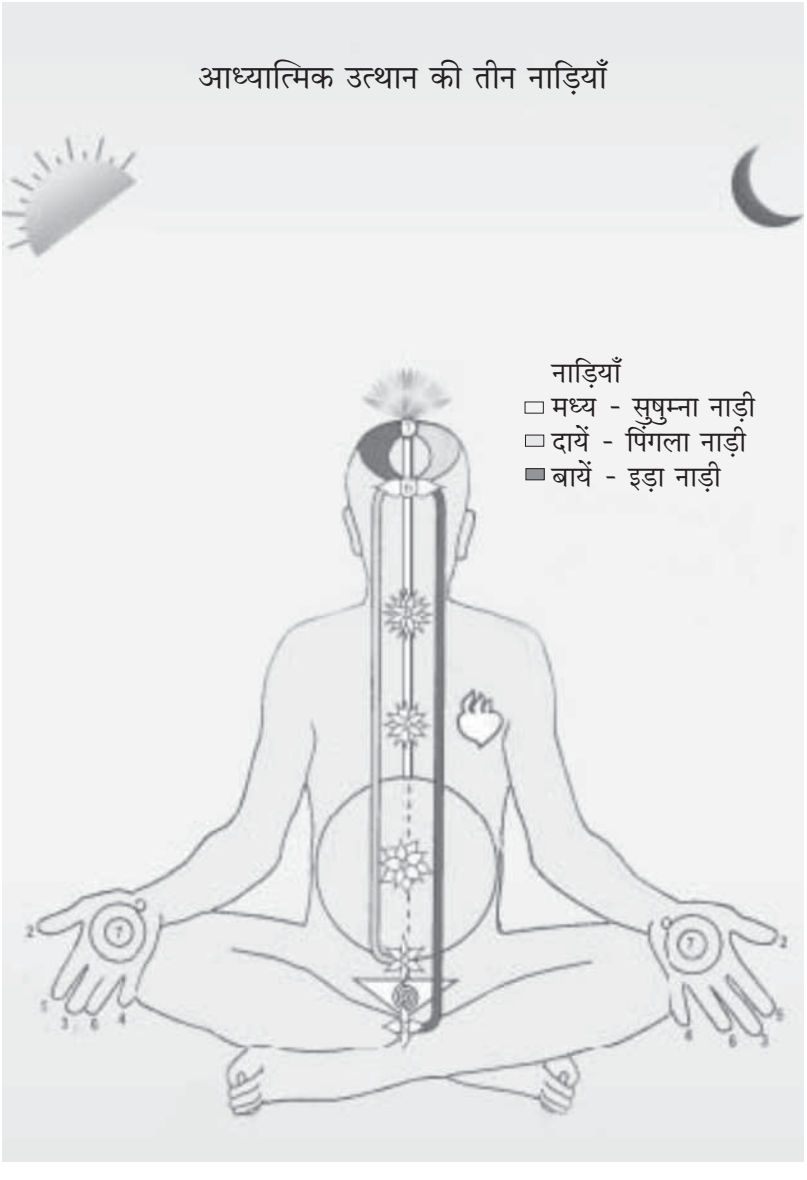

चित्र संख्या - 3

3
आध्यात्मिक उत्थान की तीन नाड़ियाँ

हम प्रश्न पूछते हैं-ईश्वर क्या है? नास्तिक कहते हैं-ईश्वर नहीं होता। परन्तु आस्थावान व्यक्ति दृढ़ता से कहता है कि ईश्वर है, भले ही, उसने उसे नहीं देखा हो। इनमें कौन सच है? परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि नास्तिक किस अधिकार से कहता है कि परमात्मा नहीं है? किस आधार पर अपनी मान्यता को सिद्ध कर सकता है? क्या उसने ध्यान, चिंतन और मनन किया है? कितने वर्ष उसने अपनी अंतरात्मा की खोज में आध्यात्मिक साधना की है, जिसके आधार पर अधिकारपूर्वक वह ऐसा कहता है? इसके विपरीत, जो व्यक्ति परमेश्वर में विश्वास रखता है, वह अपने भीतर, मन और बुद्धि से परे अवचेतन से कुछ महसूस करता है, कि इसके पीछे कोई मतलब अवश्य है, कोई सिद्धांत है, कोई न कोई एक मिला-जुला महान् संगठन है, जो ब्रह्मांड के कार्य को सुचारु रूप से चलाता है। (प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के 'गति के नियम' के अनुसार 'किसी वस्तु में गति देने या गति में बदलाव के लिए बल जरूरी है' वास्तव में हम किसी बल (शक्ति) को देख नहीं सकते परन्तु उसके प्रभाव को महसूस किया जा सकता है, जैसे बिजली और उसके पंखे के चलन को। बिजली, ध्वनि, चुम्बकत्व आदि निर्जीवित शक्तियों से भिन्न, इस शक्ति, ब्रह्मांड चालक शक्ति में गति को घटाने-बढ़ाने नियंत्रण (कंट्रोल) करने की चेतना भी है। यही जीवित या चेतन शक्ति जो ब्रह्मांड चला रही है परमात्मा कही जाती है)।

यद्यपि साधक को ईश्वर का अनुभव नहीं होता, फिर भी वह अपनी

साधना में लीन रहता है। उसके (ईश्वर के) लिए वह गहराई से सोचता है। एक वैज्ञानिक किसी यंत्र के अनुसंधान के लिए कितना अधिक सोचता, विचारता और योजना बनाता है तथा पहले से कितने अधिक वैज्ञानिकों ने विभिन्न सिद्धांतों के विकास के लिए कितने अधिक अनुसंधान किए होंगे। आज के वैज्ञानिकों को उनके अनुसंधानों से कुछ हासिल करने में मदद मिलती है। अत: कोई भी नई 'वैज्ञानिक उपलब्धि' एक अकेले व्यक्ति का काम नहीं है। अपितु वह अनेक वैज्ञानिकों के सामूहिक योगदान का परिणाम है। आइन्स्टाइन ने हमें 'सापेक्षवाद का सिद्धांत' (Theory of Relativity) और न्यूटन ने 'गुरुत्वाकर्षण के नियम' (Laws of Gravitation) बताए। ये नियम उनकी उपलब्धियों तथा प्राक्कल्पनाओं (Hypothesis) की पुष्टि करते हैं। बाद में, आने वाले वैज्ञानिकों को इस नियमों से (पूर्व उपलब्धियों से) लाभ हुआ। मनुष्य का विकास (Human evolution) हमेशा सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर की ओर हुआ है, जिसमें सामूहिकता द्वारा व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयास किया जाता रहा है।

मनुष्य की उपलब्धियों के लिए कोई अंतिम समय सीधा नियत नहीं है। वह तो अनगिनत घटनाओं को जोड़ने वाली एक छोटी सी घटना है। यदि एक छोटे से यंत्र के अविष्कार के लिए इतने अधिक विचार-विमर्श हुए और सतर्कता से प्रयत्न किए गए तो मनुष्य के शरीर के निर्माण के बारे में क्या कहा जा सकता है- जो बहुद्देश्यीय, हर तरह से इस्तेमाल के लायक और अनेक आयामों (पहलुओं) को मिला कर बनाया गया है। किसी सचेतन शक्ति के बिना ऐसा महान् कार्य कैसे संभव हो सकता है? इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सृष्टि की रचना में मनुष्य की समझ से परे कोई और भी श्रेष्ठ बुद्धि (Super Intelligence) का हाथ है। श्री माताजी कहती हैं - ''यदि हम वृक्ष की ओर गौर से देखें तो पता चलता है कि उसकी जड़ें भी हैं जो उसे

संभाल कर रखती हैं, और उसका पोषण तथा उसकी वृद्धि करती हैं।''

हमें विनम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए कि हमें ऐसी महान चेतना (Super Awareness) का ज्ञान नहीं है - क्योंकि वह हमारी उत्पत्ति के पहले से ही मौजूद थी। हम केवल, उसे जान सकते हैं, जो हमारे बाद उत्पन्न हुए। परन्तु हम उस घटना के बारे में नहीं जान सकते, जो हमारे पैदा होने से युगों पहले हुई हो- जो 'आदम और ईव' से भी पहले की हो। फिर भी, खोज या अनुमान द्वारा किंचित ज्ञान हो सकता है परन्तु इस थोड़ी सी जानकारी के आधार पर हम किसी नतीजे तक नहीं पहुँच सकते। खोज के परिणामों के आधार पर अलग-अलग लोग अलग-अलग निष्कर्शों तक पहुँचते हैं और फिर 'सच क्या है' इस बात को लेकर उनमें आपसी वाद-विवाद होते हैं। इस प्रकार यह संभव नहीं है, कि हम निश्चित आकृति दें या उसे कोई नाम दें, केवल उसे हम, एक 'परम चेतना का सिद्धांत'-'अज्ञात', 'परमात्मा' (God) या सर्वशक्तिमान कह सकते हैं।

प्राकल्पना (Hypothesis) कीजिये कि 'परम चेतना का सिद्धांत' ही सबकी उत्पत्ति का मूल कारण है, ताकि हम स्वाभाविक तौर पर मान सकें कि हमारा भी संबंध उससे अवश्य है। हम उससे बिल्कुल अलग नहीं हो सकते। संतों ने हमारी दशा ऐसी बतायी है कि-हम उस मछली के समान हैं, जो हमेशा पानी में रहती है, परन्तु फिर भी प्यासी ही रहती है। उसी प्रकार हम अपने उद्गम (परमात्मा की सत्ता) के अंतर्गत रहते हुए भी उसके 'आनंद' के बारे में नहीं जानते। अगले अध्यायों में 'सहजयोग' के विषय में बताया जाएगा, जिससे हमें इस परम चेतना का ज्ञान प्राप्त होता है। इस बीच हम, अपनी परिकल्पना को लेकर आगे बढ़ते हैं- कि उस 'महान चेतना' का गुण एक 'बल', शक्ति या ताकत है, जो अपनी तेजस्विता (intensity) में, अपनी इच्छा (desire) तथा अपने कार्यों (actions) के अनुसार बढ़ती-घटती रहती

है। इस चैतन्य शक्ति (Power of awareness) में सबसे पहले अपने को व्यक्त करने की इच्छा-शक्ति होती है।

एक वैज्ञानिक किसी नई वस्तु का अनुसंधान, विकास या निर्माण तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसमें इच्छा न हो। अतः हर वस्तु की रचना के पीछे एक उत्प्रेरणा शक्ति (या इच्छा-शक्ति) होती है। भगवान् बुद्ध के अनुसार इच्छायें दुखों का कारण होती हैं। जिस प्रकार की इच्छाओं के बारे में वे कहते थे और हम जिन इच्छाओं के बारे में बातचीत कर रहे हैं, वे एक जैसी नहीं हैं। भगवान् बुद्ध के अनुसार हमारी वे इच्छाएँ, जो ओछी हैं, अंधी हैं तथा अशुद्ध हैं, वे ही हमें दुखों की ओर ले जाती हैं। फिर भी, इनके अलावा हमारे अंदर परम-ज्ञान प्राप्ति की इच्छायें भी हो सकती हैं। क्या उन्होंने यह नहीं कहा- कि जो बोधिसत्व या ज्ञानी (enlightened) व्यक्ति होता है, वह अपने करुणामय परमार्थ या मानव-जाति के उत्थान की इच्छा करता है। उसी प्रकार परमात्मा की भी शुद्ध इच्छा हो सकती है, जिससे वे अपने प्रेम को व्यक्त करें। जब-जब इस 'परम चेतना' ने इच्छा की है, तब-तब उनकी शक्ति ने अभिव्यक्ति के लिए सृष्टि की रचना की है। उस महान शक्ति की गति ने ऐसे अनेक आकार और रूप धारण किए, जिससे ग्रह-नक्षत्रों की रचना हुई।

श्री माताजी निर्मला देवी जी के उपदेशानुसार, जो सहजयोग द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि 'हमारे शरीर की भौतिक तथा आधिभौतिक शक्ति के क्षेत्र में एक 'इच्छा-शक्ति' निहित है, जो हमारे शरीर के बायें भाग में होती है जिसे चंद्रनाड़ी कहते हैं। यह नाड़ी शरीर की बाईं ओर कार्यरत रहती है और भूतकाल (चेंज) की स्मृतियों को मनुष्य की चेतना से जोड़ती है। इस प्रकार, कार्य करने के लिए उसे प्रेरित करती है। जब तक यह नाड़ी कार्यरत रहती है, तब तक मनुष्य में जीने की चाह होती है और जब यह इच्छा-शक्ति इस नाड़ी

से हट जाती है, तब मनुष्य का अंत हो जाता है। यह नाड़ी भावनाओं को उभारती है और हमारे मस्तिष्क के दाहिने भाग में 'प्रतिअहंकार' रूपी तंत्र का निर्माण करती है। आधुनिक भाषा में हम कह सकते हैं कि यह (प्रतिअहंकार), मन की भावनाओं या दबी हुई इच्छाओं को, वृहत् अर्थों में व्यक्त करती है।'

फिर भी, इच्छाओं की पूर्ति का सामर्थ विभाग होना आवश्यक है। इच्छाओं की तृप्ति के लिए, यह 'इच्छा-शक्ति', एक नाड़ीतंत्र का निर्माण करती है, जो हमारे शरीर के दाहिने भाग में होता है- जिसे हम सूर्यनाड़ी कहते हैं। शरीर में स्थित प्रेरणा-शक्ति ही 'कार्य करने की शक्ति' का रूप लेती है। किसी काम को करने के लिए हमें शरीर और बुद्धि दोनों का इस्तेमाल करना पड़ता है। हमारी सूर्यनाड़ी, शारीरिक और मानसिक कार्य की नाड़ी है। यह नाड़ी अपने कार्यों के उपफल के रूप में एक तंत्र का विकास करती है-जिसे हम 'अहंकार' कहते हैं। अहंकार (ego) हमारे मस्तिष्क के बायें भाग में एक गुब्बारे के समान बन जाता है। हमारी रीढ़ के बाहर, ये दोनों सूक्ष्म नाड़ियां, स्थूल रूप में अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र (Theory of Relativity) को व्यक्त करती हैं। (चित्र संख्या-३ देखें)

जब 'चेतन शक्ति' अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए कार्य करती है, तब उसे जो प्राप्त होता है, उसे संभालकर रखना भी चाहिए। केवल मकान बनाने का कोई अर्थ नहीं होता है, यदि उसके रख-रखाव का कोई प्रबंध न हो। चूँकि चेतन-शक्ति सतर्क और सूझ-बूझ (intelligence) वाली है, इसलिए वह अपने निर्वाज्य प्यार द्वारा अपनी कृति को संतुलित और संभाल कर रखती है। इसके फलस्वरूप शरीर के मध्य में तीसरी नाड़ी का निर्माण होता है, जो उत्क्रांति, भरण-पोषण (sustainence) और आध्यात्मिक उत्थान की नाड़ी, सुषुम्ना है। अपनी प्यार शक्ति से वह चेतन-शक्ति ऊपर की ओर

उठती है और पुन: अपना संबंध, अपने उद्गम, सर्वव्यापी परमचैतन्य से जोड़ देती है। इस सूक्ष्म नाड़ी में प्यार बहाव स्थूल रूप में परानुकंपी (parasympathetic) तंत्रिका-तंत्र के रूप में व्यक्त होता है।

इन सब कार्यों की समाप्ति तभी होती है, जब 'मानव' को उसका अर्थ मिल जाता है (अर्थात् जिस उद्देश्य के लिए उसकी रचना की गई, उसकी पूर्ति हो जाती है)। अभी जब 'अर्थ' को जानने की इच्छा पूरी नहीं होती है, मनुष्य में इच्छा की शक्ति (कुंडलिनी) यह अतृप्त मनुष्य का सृजन करती है, व्यक्त करती है और तब अवशिष्ट शक्ति के रूप में सो जाती है (इसी 'शक्ति' को जागृत करना तथा सर्वव्यापी चैतन्य शक्ति से मेल कराना ही सहज योग का कार्य है, परन्तु अब यह घटना सिर्फ विरलों का न हो कर सर्व सामान्य में भी हो रही हैं और उन्हें भी परम चैतन्य का ज्ञान दे रही है। यह मानव इतिहास में इस घोर कलियुग की एक अद्‌भुत अपूर्व घटना है)।

जब मनुष्य कोई काम करता है, तब वह अपनी अज्ञानता में यह सोचता है कि सारा कार्य, वह कर रहा है, परन्तु वास्तव में वह केवल 'निर्जीव' कार्य करता है। (अर्थात् उसके किसी भी काम में 'सजीवता' या चैतन्य प्रवाहित नही होता है)। कवेल प्रकृति ही सब जीवंत-कार्य करती है। मनुष्य की यह झूठी धारणा, कि वह सब करता है, उसके अहंकार (ego) को मजबूत करती है। उसका अहंकार एक गुब्बारे जैसा फुलने लगता है। अत्यधिक कार्यशीलता से उसका अहंकार रूपी गुब्बारा (मस्तिष्क के बायें भाग में) फुलता जाता है, और एक ऐसी अवस्था आती है, जब और फुलने की जगह नहीं रहती है। परिणामस्वरूप, विपरीत दिशा में उसका आकार बढ़ता जाता है, जिससे प्रतिअहंकार (super ego) पर दबाव पड़ता है और बाईं नाड़ी पर अधिक बोझ पड़ने लगता है। ऐसा व्यक्ति, अपनी सब संवेदनशीलता खो देता है। वह भौतिक लाभ के लिए स्वार्थी बन जाता है तथा दूसरों पर अपना अधिकार

जमाता है। उसका व्यक्तित्व कुटिल, रूखा और आक्रामक बन जाता है। अपने अहंकार से अंधा होकर उसकी अंतिम परिणति असंगत और मूर्ख जैसी हो जाती है।

अत्यंत भावुक हो जाना चंद्रनाड़ी की कमजोरी का फल है। इससे उसकी (मनुष्य की) अनुभूति में हर्ष और विशाद के बीच एक नाटकीय द्वन्द बना रहता है। जो लोग वाम-प्रधान (left sided) होते हैं, वे बहुत-सी आदतों के शिकार होते हैं। वे आलसी, नकारात्मक, तामसी और अपने आप से पीड़ित रहते हैं। जब, बाईं ओर की यह चंद्रनाड़ी, मस्तिष्क के दायें भाग पर प्रतिअहंकार के रूप में अधिक दबाव डालती है, तो मनुष्य पागलपन, पक्षाघात तथा वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति अत्यधिक भावुक होता है, वह संतुलन खो बैठता है। परिणामस्वरूप उसका प्रतिअहंकार, दाहिने मस्तिष्क के ऊपर फुल जाता है और जब यह अधिक बढ़ जाता है, तब बाईं ओर स्थित 'अहंकार' को दबाता है, ताकि सूर्यनाड़ी में राहत मिले। इस प्रकार दोनों ओर की अत्यधिक क्रियाशीलता (extreme behaviour) उसे दोलक (pendulum) की तरह एक छोर से दूसरे छोर तक दोलित (oscillate) करती रहती है। दोनों अनुकंपी तंत्रिका-तंत्रों में इस प्रकार के लगातार दोलन होने से असंतुलन पैदा हो जाता है।

सूर्यनाड़ी में पुरुषत्व के गुण होते हैं- जैसे कठोरता, जाँचना-परखना, विश्लेषण करना, योजना बनाना, प्रतिस्पर्धा, आक्रामकता आदि। इसके विपरीत चंद्रनाड़ी में नारीत्व के गुण होते हैं-जैसे कोमलता, सहयोग, उत्तरदायित्वता, अन्तर्ज्ञान (दैवी अनुभूति) आदि।

हठयोग 'ह' और 'ठ' अक्षरों के मेल से बना है। 'ह' का अर्थ 'सूर्य' तथा :'ठ' का अर्थ 'चन्द्रमा' है। इस योग से कोई भी अपनी अनुकंपी

क्रियाओं को नियंत्रित कर सकता है अर्थात् वह संचित ऊर्जा (stored energy) से अधिक शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है या पूरी तरह अनुकंपी क्रियाओं को थोड़े समय के लिए बंद कर सकता है। संचित ऊर्जा के अधिक या कम खर्च करने से कोई आध्यात्मिक प्रगति प्राप्त नहीं होती। अनुकंपी तंत्रिकाओं के नियंत्रण से हृदय की गति कम की जा सकती है या थोड़ी देर के लिए रोकी भी जा सकती है। इससे हठयोगी क्षणिक समय के लिए परानुकंपी तंत्रिका का स्थूल अनुभव प्राप्त कर सकता है परन्तु उसे कार्यान्वित नहीं कर सकता (परानुकंपी तंत्रिका हमारी परमात्मा से योग की नाड़ी है)। हठयोग से मन को नियंत्रित तो किया जा सकता है, परन्तु वह आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयुक्त नहीं होता है, क्योंकि वह स्वतंत्र नहीं होता है, तथा अनेक शर्तों से बंधा रहता है।

अनुकंपी और परानुकंपी दोनों तंत्रिका-तंत्र केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र (central nervous system) का इस्तेमाल करती हैं सहजयोग के अनुसार शरीर में सात सूक्ष्म मौलिक केन्द्र हैं। सूचनाओं के उत्प्रेरक आवेग, इन सूक्ष्म केन्द्रों से मस्तिष्क की कोषिकाओं से होकर केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में प्रवेश करते हैं, जहाँ से शरीर के तंतुओं (tissues) को, उन सूचनाओं की संवेदना पहुँचती है। नहीं तो कोषिका को कैसे ज्ञात होगा कि कब और कैसे उसे अनेक भागों में विभाजित होना है, या वृद्धि को प्राप्त होना है। शरीर को कैसे मालूम होगा कि उसमें चय-अपचय (catabolism and metabolism) की प्रक्रिया कैसे चले। वह सूचनाओं की संवेदनाएं केवल अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिका-तंत्र से ही प्राप्त करता है।

हर कोषिका में जीवन (प्राण) है और हर जीवित कोशिका अपने वंशाणु (genes) द्वारा चेतना शक्ति का सहारा लेती है, क्योंकि वह भी चेतनायुक्त है। अत: जो चेतनायुक्त है, उसे जीवित कहते हैं, नहीं तो उसे

चेतनाहीन या मरा हुआ कहा जाता है। जिस क्षण चेतना शक्ति से उसका (कोशिका का) संबंध टूट जाता है, उस समय वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है (उदाहरण के लिए, जैसे शरीर का कोई भाग कट कर अलग हो जाय तो वह भाग मर जाता है, क्योंकि उसका संबंध शरीर के चेतना केन्द्र से टूट जाता है)। जब किसी समय किसी नाड़ी में अत्यधिक बोझ पड़ जाता है, तब वह उत्तेजित हो जाती है और उसकी संवेदनशीलता धूमिल हो जाती है तथा उसके अंदर सूचना की संवेदना कमजोर हो जाती है। परिणामस्वरूप वह तंत्रिका-तंत्र, अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिकाओं से आने वाली सूचनाओं की व्याख्या (decode) करने में असमर्थ हो जाती है। जब सूचना का संबंध बहुत विकृत हो जाता है या टूट जाता है, तब शरीर की कोशिकाएँ और तंतु ठीक तरह से काम नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप अनेक मानसिक रोग (psychosomatic diseases) उत्पन्न हो जाते हैं। जब बीमारी बड़ी पुरानी हो जाती है, तब कोषिकाओं की संवेदनायें चली जाती हैं तथा कैंसर जैसी घातक बीमारी हो जाती है।

इस प्रकार शक्ति के अनंत भंडार से जुड़ी परानुकंपी तंत्रिका का संपर्क धीरे-धीरे टूटता जाता है, जिससे शरीर के क्षय होने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। उग्र मानवीय प्रवृत्तियाँ मनुष्य को प्राकृतिक (कुदरती) नियम से अलग कर देती हैं, तथा संतुलन शक्ति के प्रवाह के अभाव से उसका विनाश अवश्यंभावी हो जाता है।

मस्तिष्क के दोनों गोलार्ध (hemispheres) एक दूसरे के विपरीत परन्तु पूरक कार्य (complementary functions) करते हैं। बायाँ गोलार्ध (left hemisphere) जो शरीर के दायें बाजू का अंकलन करता है, उसकी विशेषता यह है कि वह एक ही ढर्रे पर चलता है - जैसे सोचना-विचारना, योजना बनाना और विश्लेषण करना। दाहिना गोलार्ध (right hemisphere) जो शरीर

की बाईं बाजू का अंकलन करता है, वह भावुकता, स्मृति , तथा इच्छा की उधेड़-बुन में खोया रहता है।

बायाँ गोलार्ध मनुष्य को, मस्तिष्क के संस्कारों (past conditionings) से परे ले जाने का विभाग है। अध्ययन और विकास की प्रक्रिया से वह अपने आपको व्यक्त करता है। यह विभाग, नये ढाँचों की रचना, व्यवहार के तौर-तरीके और सैद्धान्तिक विचारों की ओर ले जाती है। हम इसे अव्यक्त विचार, सांकेतिक भाषा, मूक-चित्रकारी तथा अन्य कलाओं की ओर ले जाते हैं, फिर भी, उनका विकास परानुकंपी या केन्द्रीय परानुकंपी के संबंध पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये कलाकार अनुकंपी तंत्र द्वारा कार्य करता है, तो उसकी अभिव्यक्ति एक-तरफा होती है, जो अवचेतना तथा अतिचेतना (subconscious and supraconscious) तक ही सीमित होती है। परन्तु जब मनुष्य अपने परानुकंपी तंत्रिका-तंत्र (parasympathetic nervous system) से कार्य करता है तब उसके कृतित्व (creativity) को प्रेरणा देने वाली अभिव्यक्तियाँ उभर कर सामने आती हैं, क्योंकि परानुकंपी तंत्रिका-तंत्र का संबंध 'अनंत अज्ञात सामूहिक चेतन,' या परमात्मा की परम चेतना से होता है।

4
सूक्ष्म-ब्रह्मांड

शरीर के भीतर भिन्न-भिन्न एकाग्रता से करोड़ों प्रकंपनों (millions and millions of vibrations) के चक्कर लगाने वाली जैव शक्तियाँ 'चक्र' कहलाती हैं।

चक्र का अर्थ 'पहिया' (wheel) है। ये मानसिक और भावात्मक कार्यों के लिए अपनी धुरी के चारों ओर, घूमने वाली शक्तियों की गतियाँ हैं। इसीलिए इन्हें चक्र कहते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी अपनी कक्षा (axis) के चारों ओर घूमती है, उसी प्रकार शक्ति के ये क्षेत्र (field) एक विशेष प्रकंपन की गति से समतल सतह (horizontal plane) पर दक्षिणावर्त (clockwise) दिशा में शरीर के भीतर अपने निर्दिष्ट स्थानों पर चक्कर लगाते हैं। ये चक्र, हमारे स्थूल शरीर के भीतर, अपने-अपने क्षेत्र में रीढ़ की हड्डी के बाहर स्थूल केन्द्रों (plexuses) के रूप में उद्धृत हैं, शरीर के अवयवों तथा तंत्रिका-अंत: स्रावी तंत्रों (neuro-endocrinal systems) का नियंत्रण करते हैं।

ये (चक्र) चेतना के केन्द्र हैं। क्षण-प्रतिक्षण प्रकंपनों के आदान-प्रदान से संबंधित अंगों को नियंत्रित करते हैं। अत: हमें अपने लाभ के लिए यह जानना आवश्यक है कि किन-किन बातों से वे (चक्र) प्रभावित होते हैं। हमारे प्रत्येक विचारों और कार्यों से उन केन्द्रों की संवेदनाओं और कार्यों पर असर होता है।

जब ये चक्र (केन्द्र), तनावमुक्त और शक्ति से परिपूर्ण होते हैं तब, ऊपर की ओर उठती हुई कुंडलिनी द्वारा वे आसानी से पार किए जा सकते हैं।

मनुष्य के चित्त का 'आत्मा' (self) में लीन हो जाने से 'सामूहिक चेतना' की अनुभूति होती है, जो 'आत्मा' की विशेषता (गुण) है।

चक्रों की संवेदनाएँ, उस समय धूमिल हो जाती हैं, जब उन्हें त्रुटिपूर्ण (अनावश्यक) व्यवहार से आघात पहुँचता है। तब मनुष्य बड़ी आसानी से अनेक गंदी आदतों और तोड़-फोड़ के तौर-तरीकों के साथ जीवन व्यतीत करता है। कुण्डलिनी समग्र रूप में ऊपर को उठना चाहती है, परन्तु यदि ऊपर के केन्द्र पूरी तरह से खुले नहीं रहते, तो उसके कुछ ही तार (threads), उन्हें भेद कर ऊपर उठ पाते हैं। कुण्डलिनी कुछ हद तक ही ऊपर की ओर उठ कर रास्ता बनाती है। सहजयोग के कार्यक्रम में कुण्डलिनी का कंपन, खुली आँखों से, उस चक्र पर देखा जा सकता है जिसमें बाधा (रुकावट) रहती है, अर्थात् जो बंद-सा रहता है। वह उस चक्र में शक्ति की कमी की पूर्ति करती है, रोग या बाधाओं को दूर करती है तथा अपने उत्थान के मार्ग को साफ करती है। सहजयोग के इलाज के तरीके इस सूक्ष्म 'समग्र नेटवर्क' के जरिये, इस्तेमाल में लाए जाते हैं। शरीर के जिन अंगों और प्रक्रियाओं (processes) पर वे नियंत्रण करते हैं, उनमें पोषण, नियमन और सुधार होता है, इसीलिए वे बीमारियों को जड़ से उखाड़ फेंकते हैं।

अनुकंपी और परानुकंपी, दोनों तंत्रिकाएँ, चक्रों (plexuses) पर एक दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। जैसे, चक्रों को परानुकंपी विश्राम (relaxation) देती है या उन्हें शक्ति प्रदान करती है, इसके विपरीत अनुकंपी उन्हें निचोड़कर उनकी शक्ति को ले लेती है और उन्हें संकुचित कर देती है। एक, उनमें (चक्रों में) प्राण-शक्ति (vitality) का संचार करती है तो, दूसरी उसे खर्च करती है। मनुष्य की नाभि (navel) के पास परानुकंपी नाड़ीतंत्र (सुषुम्ना) में एक अंतराल (gap) होता है परन्तु अनुकंपी तंत्रिका नाड़ीतंत्र में कोई खाली स्थान नहीं होता। इसी अंतराल के कारण, खोज के लिए

परानुकंपी में प्रवेश करने की सारी कोशिशें अभी तक नाकाम रही हैं। ये (नाड़ियाँ) उन तीन सीढ़ियों के समान हैं, जिनमें से दो तो जमीन पर टिकी हैं और तीसरी या बीच वाली सीढ़ी जमीन के ऊपर हवा में लटकी हुई है। इसलिए जब कभी हम अपनी चेतना में ऊपर उठने का प्रयास करते हैं, तब हम अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र पर ही चलते हैं (यहाँ यह कहना उचित होगा कि अब तक मानव-जाति ने विज्ञान से जो कुछ किया है और पाया है,वह ज्यादातर अनुकंपी प्रयत्नों का परिणाम है। जिससे मनुष्य पदार्थ और उससे प्राप्त शक्ति के आयामों तक सीमित, अधिकांशत: अपने विनाश का ही साज-सामान जुटा पाया है)।

मृत्यु हो जाने पर, कुण्डलिनी शरीर को त्याग देती है, और चक्रों के अंदर संचित संस्कारों तथा चेतना की उन तमाम बुराइयों या अभावों को, अपने साथ लेकर चली जाती हैं, जो इस जन्म तथा पूर्वजन्मों के कर्मस्वरूप वहाँ जमा हो जाते हैं।

अत: हम स्वर्ग जाने के लिए मृत्यु का इंतजार नहीं करना चाहिए। यदि हमारे चक्र खुले हुए और शुद्ध हैं, तो इस धरती पर ही स्वर्ग बन जाता है। इसीलिए चक्रों के कार्यों को समझना हमारे लिए बड़े महत्त्व की बात है। जिस वातावरण से चक्रों को पोषक तत्त्व मिलते हैं, यदि वह प्रदूषित हो जाता है, तो चक्रों में खराबी आ जाती है, जिससे मनुष्य रोगग्रस्त हो जाता है और असहनीय वेदनायें भोगता है। यही नर्क की स्थिति है। नरक मृत्यु के बाद की अवस्था नहीं है बल्कि विपत्तियों की दशायें हैं जिन्हें हम इस धरती पर झेलते हैं।

इससे तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं-पहली तो, हमें अपने, मूल, या चक्रों को पहचानना चाहिए। दूसरी बात यह, कि-हम उन्हें निर्मल रखें और

उन्हें शक्तिशाली बनायें। तीसरी, जिस वातावरण में हम रहते हैं, उन्हें चक्रों की स्वास्थ्य-वृद्धि अनुकूल बनायें।

सहजयोग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए, अपने स्वयं के तथा दूसरों के चक्रों के प्रति संवेदनशील होना या उन्हें महसूस करना संभव है। इस प्रकार की संवेदना से व्यक्ति अपने स्वयं के चक्रों की दशा तथा उन पर शारीरिक और मानसिक कार्यों के प्रभाव को निश्चित रूप से जान सकता है। हाथ पर होने वाले प्रकंपनों (vibrations) द्वारा इन संवेदनाओं को अनुभव किया जा सकता है।

मूलाधार चक्र

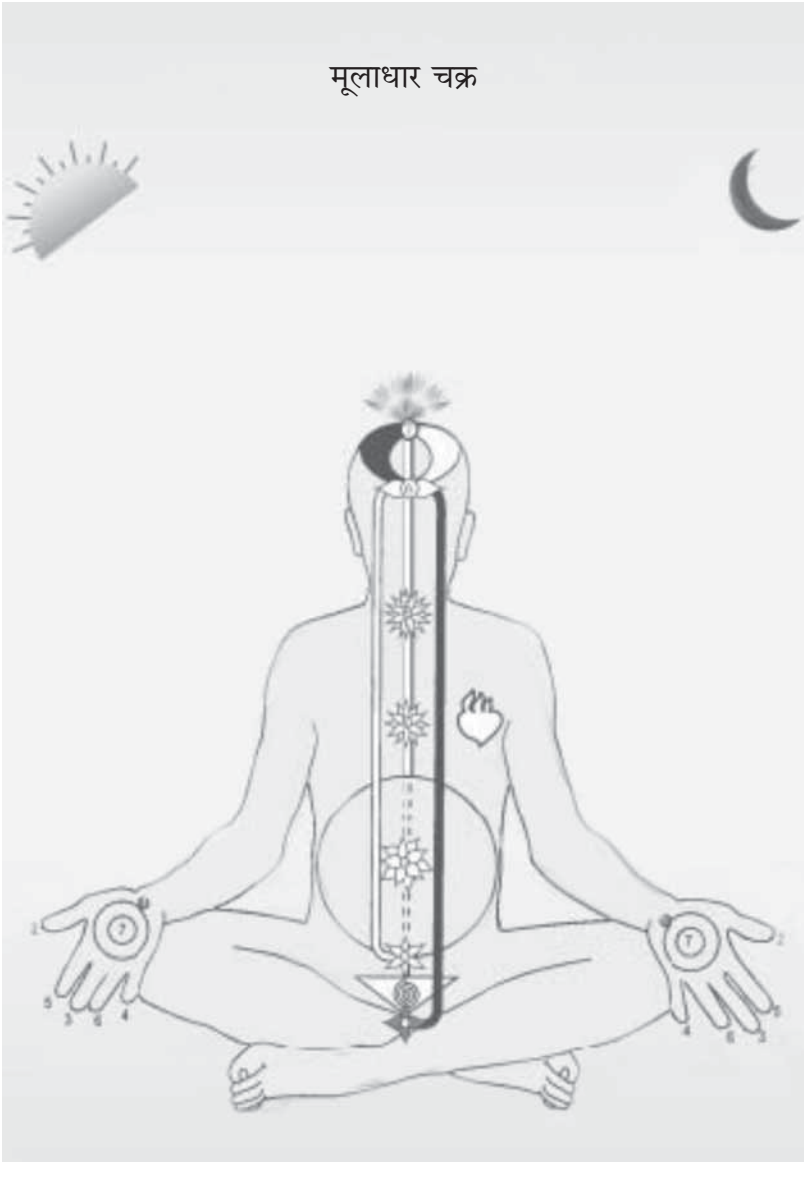

चित्र संख्या - 4

5
आधारभूत-बल

आदिकाल के आरंभ में, महान धरती माँ ने सब प्राणियों को जीवन दिया। वही मौलिक शक्ति है जिससे मनुष्य और पशु दोनों का पोषण और वृद्धि होती है।

उलुरु की पौराणिक कथा - आस्ट्रेलिया

प्राचीन काल में बुद्धिमान लोग धरती माँ को जीवित ग्रह मानकर उसकी पूजा करते थे। वे उसे पोषण करने वाली माँ के रूप में जानते थे, उसे उर्वरता का प्रतीक समझते थे। जब तक लोग धरती को पवित्र, जीवित और संवेदनशील मानते रहे, तब तक कोई उसके 'शोषण' की बात सोच भी नहीं सकता था, क्योंकि कोई भी अपनी माँ के प्रति आक्रामक या स्वामित्व का रवैया नहीं अपना सकता था। धरती माँ से इस घनिष्ट संबंध के बारे में आधुनिक इंसान को अचानक तब पता चला, जब अंतरिक्ष यात्रियों ने पृथ्वी को अंतरिक्ष से देखने में सफलता हासिल की। उसकी सुन्दरता और सजीवता को देखकर वे इतने मंत्र-मुग्ध हो गये कि उनके संबंध को एक नया आयाम मिला। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, अमेरिका और पूर्व के देशों, दोनों में बहुत सी आदिम जनजातियों और पारंपरिक समुदायों के लोग धरती माता की पूजा आज भी करते हैं।

रसायन शास्त्री जेम्स लव लॉक और सूक्ष्म जैव-विशेषज्ञ लिन मारगुलीस ने अपने वैज्ञानिक शोध में समूची धरती को एक 'जीवित अंग' के समान माना है।

उसकी पर्यावरण की विशेषताओं के अवलोकन से उसकी जटिलता का ज्ञान होता है, जैसे उसके चारों ओर के पर्यावरण की संरचना, समुद्र में नमक की मात्रा, वनस्पतियों और प्राणियों में सूक्ष्म मात्रिक तत्व (trace elements) सभी, यह दिखाते हैं कि उनका विनियमन (regulation) जटिल सहयोगशील तंत्र जाल द्वारा होता है जो अपने आप व्यवस्थित होने वाली, तंत्र प्रणाली की विशेषता को व्यक्त करती है।

धरती माँ के कार्य और गुणों को, उसके भागों के योग से जानना संभव नहीं है, क्योंकि उसके प्रत्येक तंतु एक दूसरे से गुँथे हुए हैं और वे सब आपस में एक दूसरे पर निर्भर हैं। असंख्य मार्गों (channels) से चलने वाली उसकी संचार व्यवस्थाएँ अत्यंत जटिल और टेढ़ी-मेढ़ी (nonlinear) हैं। उसका यह रूप हजारों करोड़ों वर्षों के दौरान विकसित हुआ है और अभी भी विकास की ओर लगातार बढ़ रहा है। यह एक शक्तिशाली पौराणिक मिथक है, ऐसा समझ कर दो वैज्ञानिकों ने उसका नाम ग्रीक के धरती की देवी के नाम पर 'गाइया सिद्धांत' (Gaia hypothesis) रखा।

हर जीवित प्रक्रिया में बुद्धि (intelligence) तत्व है। चूँकि धरती एक जीवित अंश है, अत: उसके पास भी हमारी जैसी बुद्धि होगी और जिसमें बुद्धि होती है, उसमें चेतना भी होती है। परिणामस्वरूप धरती को भी हम, एक चैतन्य हस्ती मान सकते हैं। हमारा पहला केन्द्र (चक्र) भी धरती माता के इस चेतन तत्व से बना है।

कुण्डलिनी का उत्थान, उसके निवास स्थान (पहले केन्द्र) से ऊपर की ओर सातवें केंद्र (या चक्र) तक होता है। वह हमारे शरीर के तालुभाग के क्षेत्र (fontanelle bone area) को भेदकर सातवें केन्द्र को पार करती है और सर्वव्यापी परमात्मा, जो सामूहिक चेतना (universal unconscious) के रूप

में सर्वत्र व्याप्त है, से मिल जाती है।

पहला चक्र, रीढ़ के नीचे थोड़ा बाहर स्थित है और कुंडलिनी रीढ़ के निचले भाग त्रिकोणाकार हड्डी में स्थित है। अनुचित रूप से तथा अपवित्र भावना से वहाँ प्रवेश करने की अनधिकार चेष्टा से यह (पहला चक्र) कुण्डलिनी की रक्षा करता है। (चित्र संख्या-4 देखें)

विकास (evolution) के प्रथम चरण में, अमीबा (amoeba) का निर्माण हुआ, जो एक कोशीय (unicellular) प्राणी है। उसके पश्चात् वह अधिकाधिक जटिल (complex) होता गया, तथा एक से अनेक कोशिकाओं में विभाजित तथा विकसित हो गया। वह पृथ्वी तत्व से बना हुआ है और इसी से जीवन की शुरुआत होती है। जब यह कोशिका चेतन हो जाती है, अर्थात् इसमें जीवन का स्पंदन होने लगता है, तब उसका चुंबकीय बल (magnetic force) कार्य करने लगता है। जिस व्यक्ति का मूलाधार चक्र (पहला केन्द्र) जागृत है, उसे दिशा का आंतरिक ज्ञान होता है। वह (मूलाधार) चक्र जीवात्मा के अवचेतन मन (psyche) का आधार है, जो नीचे रह कर ऊपर के सब चक्रों को सहारा देता है या संभालता है। जब उसमें किसी प्रकार का उपद्रव या हलचल होती है, तब उसकी संवेदनशीलता प्रभावित होने से व्यक्ति असंतुलित हो जाता है और मानसिक रूप से अशांत हो जाता है।

इस चक्र से शरीर के दो भौतिक कार्य होते हैं; अवधारण और मल-मूत्र विसर्जन। यह अनेक तरीकों से प्रजनन प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। मल-त्याग करने के अंग में जब दबाव पड़ता है (जैसे कब्ज होना) तब इस चक्र पर तनाव पड़ता है। दूसरी बात यह, कि आध्यात्मिक विकास के संदर्भ में यौन-संबंधी व्यवहार में अबोधिता का क्या महत्त्व है, उसे समझाया जाना

आवश्यक है। फ्रॉयड ने बताया कि यौन-वृत्तियों (sex instincts) को दबाने से मनुष्य की भावनाओं पर किस प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। परन्तु उसने अपने एक-तरफा सिद्धांत को दूर तक इतना अधिक खींचा है कि-एक तरफ सेक्स को पूरी तरह से दबाने से विकास की स्वस्थ परंपरा रुक जाती है तो दूसरी तरफ, अपवित्र तरीके से, उसका अत्यधिक आदी (गुलाम) हो जाने से स्थिति और भी अधिक बिगड़ जाती है (कहने का तात्पर्य है कि मर्यादा या नैतिकता का ख्याल रख कर मनुष्य यौन-संबंधी आचरण करे)। इस दशक के सेक्स प्रवक्ता इतनी हद तक आगे बढ़ गए हैं कि वे कहने लगे हैं कि, लोगों को सेक्स में पूरी तरह से छूट हो। उनका मत है कि, यदि आप अधिक से अधिक सेक्स का सेवन करें या आप हमेशा उसके पीछे पड़े रहें तो, वह आपका पीछा छोड़ देगा। जबकि सेक्स में अधिक रत रहने से व्यक्ति नपुंसक, कमजोर और बेकार हो जाता है। उसका व्यक्तित्व नीरस, आनंद रहित और कृत्रिम (भौंड़ा) बन कर रह जाता है। यौन-संबंधी बातों में अत्यधिक रुचि लेने तथा उसमें भले-बुरे का भेद नहीं करने, कामविकृति (perversion) होने से मनुष्य का संबंध आध्यात्म (आत्मा की चेतना) से टूट जाता है। फलस्वरूप वह जल्दी ही घातक बिमारियों का शिकार हो जाता है।

सेक्स अत्यंत सामान्य और स्वभाविक इच्छा है। अत: इसे उसके सही अर्थ में समझना चाहिए। यौन-क्रिया से कभी भी मनुष्य का आध्यात्मिक उत्थान नहीं हुआ है। अत: उसके नये-नये प्रयोग हमें हमारी चेतना की उच्चावस्था तक नहीं ले जा सकते। एक जानवर रूप में नहीं बल्कि एक उत्कृष्ट प्राणी स्तर पर भी मनुष्य ने यदि सेक्स को न समझ सका तो उसकी समझ अभी परिपक्व नहीं हो पाई है। उदाहरण के लिए, मनुष्य को इस बात की समझ है कि मल-मूत्र, गंदगी या अस्वच्छता क्या है, परन्तु पशुओं में यह बात नहीं। हमें अपने धर्म के विकसित-स्तर से ही अपने भीतर, उन नियमों

का अहसास होता है, जिनके अनुसार हम आचरण करते हैं। हम जानते हैं कि संतुलित जीवन व्यतीत करना हमारे लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। स्वाभाविक रूप से मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है। पशुओं के समान उसमें कोई बंधन नहीं है और इसी स्वतंत्रता का फायदा उठा कर वह व्यवहार में किसी भी गंदी हरकत तक जा सकता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, हमारा व्यवहार हमेशा सामूहिकता का समर्थन चाहता है।

हम जो कुछ भी करते हैं, मूलत: उसके लिए हम सबकी स्वीकृति चाहते हैं। उदाहरण के लिए, हम शराबियों और वेश्याओं की मूर्तियाँ नहीं बनवाते हैं और न उन्हें फुलों की माला अर्पण करते हैं, क्योंकि अनैतिकतापूर्ण व्यवहार करने वालों को आम जनता का समर्थन नहीं मिलता है। सेक्स के विषय में भी यह बात लागू होती है। यदि उसे सार्वजनिक समर्थन है तो उसमें पूरा आनंद है। इसलिए विवाह और पति-पत्नी में आपसी मधुर-संबंध के बिना, सेक्स आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इससे कलुषित या कलंकित व्यक्तित्व का निर्माण होता है (जो समाज के हित में ठीक नहीं है)। वैवाहिक संबंध के सिवाय अन्य किसी तरह के यौन-संबंध को सार्वजनिक समर्थन प्राप्त नहीं है क्योंकि वह मानव-जीविका के विरुद्ध है। अन्यथा सेक्स-संबंध मनुष्य की कामुकता या पशुता को पोषित करता है जो कि विकास के विरुद्ध है। अंततोगत्वा, सेक्स में अत्यंत रुचि लेने या उस पर पूर्णत: रोक लगाने से आचरण का अतिक्रमण होता है। इससे इस चक्र (मूलाधार) में रुकावट पैदा हो जाती है। विवाह को समाज में सार्वजनिक समर्थन प्राप्त है तथा उसमें संतान तथा पति-पत्नी दोनों के विकास और सुरक्षा की भावना निहित है। जिन लोगों में सेक्स (यौन संबंध) का समावेष वैवाहिक जीवन से होता है तब आपसी प्रेम-संबंध प्रगाढ़ हो जाता है और तब सेक्स का विशेष महत्त्व नहीं रह जाता।

सेक्स को रोकना या उस पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाना मनुष्य की मानसिक विकृति का परिचायक है। मन में जो कुछ पाल कर रखा जाता है, वह एक मोहभ्रम है जो जीवन में संतोष नहीं देता है, जो सचमुच में सत्य है, उसके बारे में मुनष्य कुछ कर सकता है, परन्तु जो महज काल्पनिक धारणा, मनोवृत्ति या मानसिक त्रासदी है, उसे संतुष्ट नहीं किया जा सकता। जैसे कोई शराबी जितनी अधिक शराब पीता है, शराब के प्रति उतना ही अधिक उसका मोह बढ़ता जाता है। उसकी प्यास बढ़ती जाती है। जरूरत से अधिक पी लेने से व्यक्ति, मौत का शिकार हो जाता है। उसे किसी प्रकार का लाभ कभी भी नहीं होता। ठीक उसी प्रकार सेक्स में अत्यधिक रुचि लेने से मनुष्य को पूरी तरह से संतुष्टि नहीं मिलती। इसके विपरीत, सेक्स उसके लिए मन में टीस पैदा करने वाली पीड़ा बन कर रह जाता है। जब उर्दू के प्रख्यात कवि-मिर्जा-ग़ालिब पैंसठ वर्ष के थे, तब उन्होंने एक शेर की रचना की, जिसमें सेक्स (विषय-वासना) से उत्पन्न निराशा या विफलता का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

'यद्यपि मैं अपना हाथ ऊपर नहीं उठा सकता, फिर भी मेरी आँखों में भोग-विलास (वासना) की इच्छा तेजी से दौड़ती रहती है। मन ऐसा कहता है कि मेरे सामने शराब और औरत दोनों हमेशा मौजूद हों।'

जैसे-जैसे व्यक्ति अपनी वासना की पूर्ति के लिए अनेक तरीके अपनाता है, वैसे-वैसे वह और भी उत्तेजित होता जाता है। और अंत में अत्यंत हताश होकर वह भिन्न-भिन्न प्रकार के विकृत (perverted) तरीकों का इस्तेमाल करता है। उसके इस प्रकार के अवांछित आचरणों से प्रथम चक्र की शुद्धता दूषित हो जाती है।

सेक्स से बिल्कुल विमुख जो जाना तथा संन्यासी जीवनयापन करना

(ब्रह्मचर्य जो थोपा गया हो) भी एक दूसरी चरम सीमा है, जो मूलाधार चक्र को दुर्बल बना देती है। (कहने का तात्पर्य है कि जो वस्तु जिस उद्देश्य के लिए बनाई गई है, उसका उपयोग उस काम के लिए उसकी मर्यादा के अंतर्गत करना चाहिए। अतिक्रमण नहीं करना चाहिए)। कहा गया है:-'ऐसा कुछ नहीं जिसका परित्याग करना है। संन्यासी बनने की कोई आवश्यकता नहीं। पवित्रता की भावना वासना के रहने पर निर्भर करती है। जब मन में संभोग की लालसा नहीं है, तब किसे दबाने की जरुरत है। हे मोर! अपने पंखों को झटक कर मत फेकों। बल्कि उसे पहन कर अपने स्वाभिमान को कायम रखो।'

जैसा भी हो, एक अर्थपूर्ण विवाहित जीवन तथा माता-पिता के उत्तरदायित्त्व तथा देखभाल से मनुष्य का व्यक्तित्व संतुलन और परिपक्वता प्राप्त करता है और यह संतुलन आध्यात्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है।

अज्ञान से अंधे होकर लोग जब श्मशान विद्या या प्रेतसिद्धि की साधना करते हैं, तब इस चक्र को आघात पहुँचता है। कुछ पद्धतियों में बड़े विचित्र तरीकों का इस्तेमाल करते हैं- जैसे तांत्रिकों के तरीके, जिसमें सेक्स की भी भूमिका होती है। जिसे गलतफहमी में लोग आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति का साधन समझ बैठते हैं। जबकि सेक्स को अध्यात्म के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है क्योंकि उत्क्रांति सहज (spontaneous) ही होती है। सेक्स को महत्त्व देने से उत्तेजना की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो भ्रम के सिवाय और कुछ नहीं है परन्तु यह स्थिति क्षणिक होती है और उत्क्रांति पर अप्रभावी है। किसी भी आध्यात्मिक साधना की परीक्षा यह जान कर ली जा सकती है कि उससे प्राप्त स्थिति को वह कायम रख सकती है या नहीं, या वह केवल अहंकार और प्रति अहंकार के बीच एक दौड़-धूप है। मृतात्माओं को बुलाने की साधना करना और उनसे काम लेना बड़ा ही खतरनाक काम है। मेस्मरिज्म (mesmerism), सम्मोहन (hypnotism), परामनोदिशान

(parapsychology), अतीन्द्रिय ज्ञान (extra-sensory perception), अचेतनावस्था (trance), अपने आप घटने वाली घटना जैसे उछल-कूद या उड़ने की चेष्टा ये सब मृतात्माओं के कारनामे हैं। कुछ डाक्टरों ने इन मृतात्माओं (भूतों) को प्रोटीन-56 और प्रोटीन-58 कहा है जिनसे कैंसर जैसी घातक बीमारियाँ होती हैं। इस प्रकार की सब साधनाएँ हमारे प्रथम केन्द्र (मूलाधार) की संवेदना को नष्ट कर देती है क्योंकि मृतात्माओं (भूतों) से उसका कोई संबंध नहीं है।

अंत में, तेज औषधियों के सेवन से भी इस चक्र में विकृति पैदा हो जाती है। फर्ज कीजिये कि-यदि कोई अम्ल (acid) को पी लेता है तो क्या असर होगा? अम्ल से चित्त अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है जिसका असर हमारे मध्य नाड़ीतंत्र में होता है। अत्यधिक उत्तेजना से एक प्रकार का आकस्मिक संकट उपस्थित हो जाता है, जिसका प्रभाव अनुकंपी नाड़ीतंत्रों पर होता है। फलत: चक्रों को जरूरत से अधिक ऊर्जा देनी पड़ती है। मानव के तंत्रिका-तंत्र से ऊर्जा के अतिरिक्त प्रवाह से हल्कापन (easiness) मिलने का भ्रम पैदा होता है, जैसे कोई अधर (ऊँचाई) पर हवा में तैर रहा है। ऐसे विभ्रम (hallucinations) और आत्म-अनुभूतियाँ मस्तिष्क में घटती-बढ़ती रहती है। जब औषधि (drug) का असर चला जाता है, क्योंकि पूरी उर्जा सीमित होती है और देर तक नहीं चलती है जिससे नशा उतरने पर भ्रम पैदा करने वाली औषधियों का आदी व्यक्ति (drug addict) पूर्णत: उदास हो जाता है। अधिक मात्रा में ऊर्जा बनने और व्यय होने के बीच लगातार उतार-चढ़ाव के उत्पन्न दोलन से केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र को बड़ा धक्का पहुँचाता है। इस प्रकार निरंतर अनुभव करने से मनुष्य का चित्त उसका गुलाम हो जाता है। फलत: उसके मस्तिष्क की कोशिकाएं (brain cell) नष्ट हो जाती हैं।

पहला चक्र अबोधिता का प्रतीक है और वह 'मूलाधार' के नाम से जाना जाता है। परन्तु 'मूलाधार चक्र' के ऊपर त्रिकोणाकार हड्डी (sacrum bone) में मूलाधार स्थित होता है। मूलाधार का अर्थ है- 'मूल या जड़ का आधार या सहारा।' यही मूलाधार स्वर्ण के समान दीप्ति वाली हिरण्यवर्णा देवी (कुण्डलिनी) का निवास स्थान है। उसकी स्थिति से ही पता चलता है कि जागृति के बाद कुण्डलिनी द्वारा 'सेक्स केन्द्र' पार करने का सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि वह उससे ऊपर पहले से ही विद्यमान है। अत: आध्यात्मिक उत्थान या कुण्डलिनी जागृति में सेक्स की कोई भूमिका नहीं होती है। यदि मूलाधार कमजोर पड़ जाता है तब कुण्डलिनी का उत्थान असंभव हो जाता है और जब कुण्डलिनी अपवित्रता से ग्रस्त हो जाती है तब वह वापस अपनी जगह पर सिमट कर बैठ जाती है।

जाग्रत मूलाधार से मनुष्य में बुद्धिमत्ता, समर्पण की भावना, अबोधिता और पवित्रता का संचार होता है। ऐसा व्यक्तित्व अत्यंत शुभ कल्याणकारी होता है और सार्वजनिक हित के लिए परमानंद (divine bliss) का संचार करता है।

धरती की गहराई में गढ़ा हुआ।
सदियों से वृक्षवत् खड़ा हुआ।।
रहे अडिग वह, बदले मौसम या आए तूफान।
माँ का ज्ञान ही, है जिसका परिधान।।
स्वयं ही सृष्टि के नियम बने, गणेश भगवान।
जो वह कहता, वही सत्य है, वही है माँ का ज्ञान।

स्वाधिष्ठान चक्र

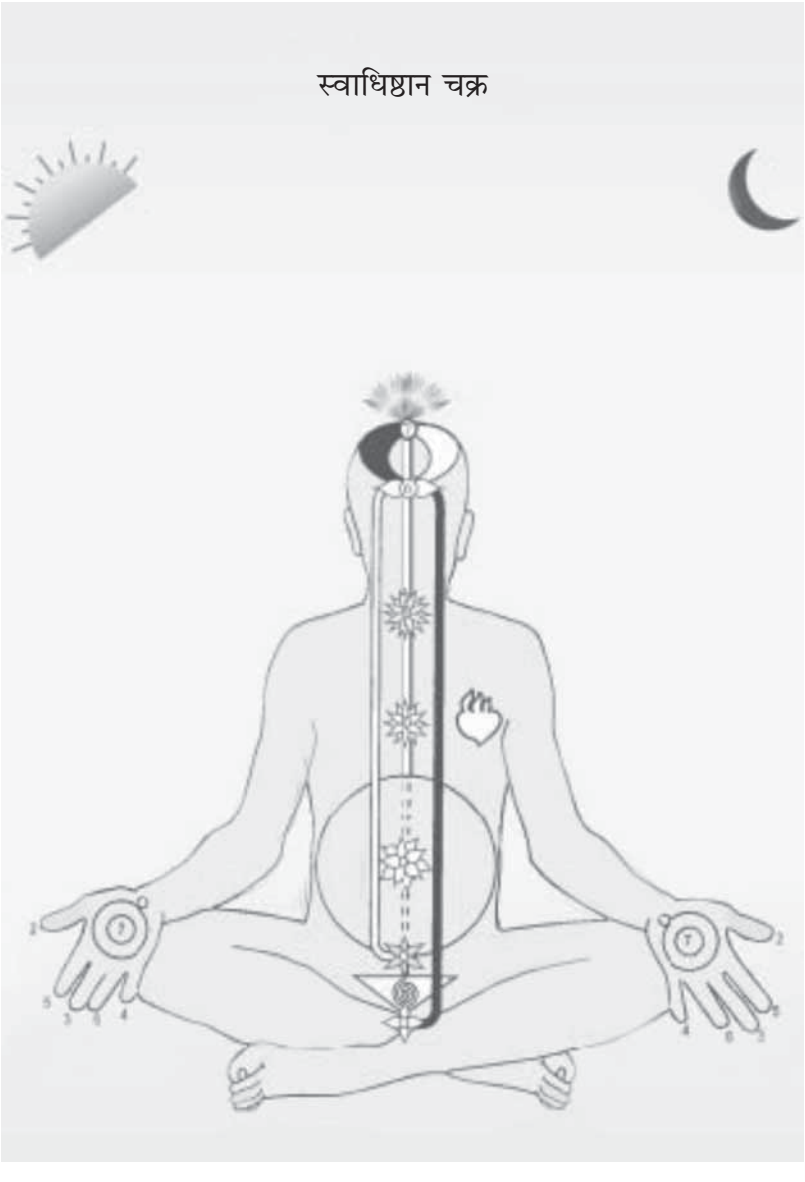

चित्र संख्या - 5

6
सौन्दर्य-बोध का विकास

जब मनुष्य को आवास की जरूरत हुई, तब उसकी बुद्धि ने उसे भवन निर्माण की प्रेरणा दी। उसी प्रकार अपने आपको व्यक्त करने (manifestation) की इच्छा से प्रेरित होकर परम-चेतना शक्ति ने अपने आपको अनेक रूपों में ढाल लिया। जैसे-जैसे मनुष्य में सौन्दर्य-बोध का विकास होता गया, वह भवन में भव्यता और सुन्दरता के आयाम जोड़ता गया। अंत में, यह सौन्दर्य-बोध वास्तुकला (science of architecture) के रूप में विकसित हुआ और यह विकास-क्रम अभी भी जारी है। जब वह अधिक सूक्ष्म होगा तब मनुष्य और भी सुन्दर वस्तुओं का निर्माण करेगा। सृजनात्मक शक्ति अपने स्वभाव के अनुसार सृजन कार्य निरंतर करती रहेगी। सौन्दर्य-बोध का विकास (development of aesthetic sense) मनुष्य के विकास पथ पर तीसरा कदम था जब कि मानवता ने अपनी देखने-सुनने की अनुभूतियों की सीमा को पार कर लिया। पहली बार मानव ने अमूर्त (abstract) के क्षेत्र में कदम रखा, जिससे उसे अपनी इन्द्रियों से परे कल्पना करने की, कल्पना को साकार रूप में देखने की और भविष्यवाणी करने की कल्पना-शक्ति मिली। इस क्षमता से वह और आगे प्रगति करता गया और उसने अपनी सान्दर्य बोधिता को भी विकसित किया।

कलाकार पहले कल्पनाशील होता है। उसमें तीनों आयामों से परे जो कुछ छिपा होता है, और वह उसके मस्तिष्क में एक स्वरूप ले लिया होता है, उसे बाहर प्रक्षेपण करके दिखाने की क्षमता होती है। यह उसके लिए प्रकृति का विशेष वरदान है। पशुओं में यह क्षमता नहीं होती। जिसमें यह प्रतिभा

होती है, अवचेतन से जुड़कर आनन्द की चीज़ रचता है जिससे चैतन्य बहता है और वह उस क्षेत्र की उच्चतम रचना बन जाती है चाहे वह पेंटिंग, संगीत मूर्तिकला, साहित्य या वास्तुकला क्षेत्र की हो।और वह रचना समाज को आगे ले जाने वाली एक प्रोत्साहन शक्ति बन जाती है।

इन सबके बावजूद, मनुष्य में किसी बात के पीछे पड़ कर उसका अतिक्रमण करने की प्रवृत्ति से द्वितीय चक्र की ऊर्जा का व्यय पूरी तरह से हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य में थकान आ जाती है। यह चक्र, मनुष्य के उदर में वसा (fats) के कणों को तोड़ता है। इनसे वह मस्तिष्क के भूरे और सफेद रंग की पुरानी कोशिकाओं को हटा देता है, जिससे विचार करने की क्षमता पुन: पैदा हो जाती है। फिर भी लगातार सोच-विचार करते रहने से सूर्यनाड़ी की शक्ति खर्च हो जाती है और इससे उत्पन्न अहंकार फुल जाता है। यह प्रतिअहंकार (super ego) को नीचे दबाता है जिससे परमात्मा की सर्वव्यापी शक्ति से प्रवाहित मध्यनाड़ी से इस चक्र का संपर्क टूट जाता है। मस्तिश्क छिद्रमय (spongy) होने के बदले चट्टान जैसा ठोस हो जाता है जिससे उसमें सोखने की क्षमता नहीं रह जाती। इस प्रकार अधिक सोच-विचार करने वाले कलाकार तथा योजना बनाने वाले लोग या उन्नति के लिए उतावले लोगों का दूसरा चक्र (स्वाधिष्ठान चक्र) कमजोर हो जाता है। (चित्र संख्या-5 देखें)

बायें स्वाधिष्ठान चक्र का गुण है, जीवन की प्रक्रिया का सही ज्ञान। मृतकों के बारे में ज्ञान स्थूल और अनधिकार चेष्टा है। इसलिए जो मर चुके हैं, उन्हें प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन-चक्र में चलने के लिए छोड़ देना चाहिए। हम लोग अपनी इस जन्म की कमी की पूर्ति के लिए मृत्यु को प्राप्त होते हैं परन्तु इसके सिवाय, यदि हमारा ध्यान मृतकों के क्षेत्र में चला जाता है तो अंत में वह सामूहिक अवचेतना के क्षेत्र में भी चला जाता है। वहाँ पर हम

सामूहिक प्रेत-जगत् के हस्तक्षेप या आक्रमण को उन्मुख हो जाते हैं। (मृतकों की आत्माएँ (प्रेतात्माएँ) जाग्रत् होकर हमारे चित्त द्वारा मस्तिष्क में आ जाती हैं और हम पूरी तरह उनके वश में हो जाते हैं)। इस जादुई संदूक के यातना देने वाले करिश्मे तब खुल जाते हैं, जब हम अपने आपको उनके हवाले कर देते हैं। मृतात्माओं (dead spirits) से किसी भी प्रकार से संपर्क स्थापित करने की कोशिश, चाहे वह कितनी भी उपयोगी और जानकारी देने वाली प्रतीत हो, हमारे अस्तित्व पर आक्रमण है। जब हमारा सीधा संबंध दिव्य शक्ति (divine power) से हो जाता है, तभी हमें अपने अंदर प्रेरणा मिलती है। यह तभी होता है जब हमारी कुण्डलिनी शक्ति केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र में जाग्रत होकर स्थिर हो जाती है। फिर हमें प्रेरणा लेने के लिए किसी और माध्यम की आवष्यकता नहीं होती।

अभी हाल में, डॉ.जेड.वी.हारवालिक, जो यू.एस. आर्मी एजेन्सी के इंजीनियर तथा अमरीका के डाउजर्स सोसाइटी (Dowsers Society) के उपाध्यक्ष हैं, दावा किया है कि उसने डाउजर्स लोगों के शरीर में प्रतिग्राही कोशिकाओं (cell receptors) की खोज कर ली है जिसके द्वारा डाउजर्स (भूगर्भ-स्थित जल या खनिज का पता लगाने वाले लोग) अपनी शारीरिक संवेदनाओं को आगे पहुँचाते (process) हैं। एक के बाद एक कई प्रयोगों के बाद, अनेक किस्म के धातुई कवच (metal shieldings) से शरीर के भागों को ढंक कर प्रयोग किया गया। उन्होंने प्रत्येक गुरदे (kidney) के ऊपर अधिवृक्क ग्रंथि (supra renal glands) की उपस्थिति की पुष्टि की जो एक बड़ा प्रतिग्राहक (receptor) केन्द्र है।

जब शरीर की प्रतिग्राही कोषिकाएँ (cell receptors), चक्रों की आवृत्ति से नहीं चलती हैं, तब वे दूसरी अवांछित भँवर में फँस जाती हैं। ये हानिकारक भँवरें, मृतात्माएँ (dead entities) हैं जिन्हें यू.पी.आई (units of psychic

interference) कहतें हैं जो सामूहिक अवचेतना या सामूहिक अधिचेतना के क्षेत्रों में मंडराती रहती हैं और बड़ी संख्या में इकट्ठी हो जाती हैं, क्योंकि उनमें पुनर्जन्म लेने की क्षमता नहीं रहती है या विकास को प्राप्त होने में वे असमर्थ होती हैं। उनका व्यवहार, परजीवी जन्तुओं (parasites) के समान होता है। जीवित रहने के लिए वे बड़ी आतुरता से अन्य अधिक शक्तिशाली जीवों (entities) के ऊपर चिपक जाती हैं। सामान्य अवस्था में वे (UPI) आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति के अंदर प्रवेश नहीं कर सकती हैं। फिर भी, कभी-कभी जब, व्यक्ति का ध्यान भंग हो जाता है और उसका मन झूम-झूम कर UPI की frequency से मेल खा जाता है या उसके अनुकूल हो जाता है, उसी क्षण मनुष्य के भीतर UPI समा जाती है। (कहने का तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य अपने मन या चित्त पर नियंत्रण नहीं रखता है, उस समय UPIs के लिए उसके द्वार खुले रहते हैं। अत: इनसे बचने के लिए मनुष्य को सज़ग और सतर्क रहना चाहिए। सतर्क रहने के लिए मनुष्य को नियमित रूप से ध्यान करना चाहिए।) यदि व्यक्ति (आध्यात्मिक रूप से) कमजोर है तो UPIs के लिए उसे धर दबाना बड़ा आसान हो जाता है। धीरे-धीरे UPIs मनुष्य के मस्तिष्क में जम कर बैठ जाती है और उसे अपना गुलाम बना लेती है।

हमारे भौतिक शरीर में, दूसरा चक्र गुरदे, यकृत (लीवर) का निचला भाग, अग्न्याशय (pancreas), प्लीहा (spleen) तथा आंतों (intestines) के कार्यों का संचालन करता है।

लीवर (यकृत) हमारे चित्त का स्थान (seat) है। चित्त की उत्पत्ति हमारी दाईं बाजू की शक्ति से होती है। जब हम कार्य करते हैं, तब उसका अनुभव हमारे मस्तिष्क के बायें भाग में चला जाता है तथा कार्य की प्रशंसा की माँग के रूप में वहाँ से लौट कर आता है जो उसकी प्रतिक्रिया है। एक संतुलित

मानव समाज में इस प्रकार की माँगों पर अंकुश रखा जाता है। (जब मनुष्य को उसके कार्य की प्रशंसा मिलती) परन्तु जहाँ भावनात्मक असंतुलन पैदा हो जाता है, व्यक्ति अपने कार्यों की ख्याति (recognition) के लिए और अधिक मांग करता है। इस प्रकार उसका अहंकार बढ़ता है। चित्त वही है, जो आत्मा को उचित समय में, उस क्षेत्र (स्थान), में प्रक्षेपित कर सकता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है, ताकि मनुष्य साधारण व्यक्ति की तरह काम कर सके। इस चित्त (attention) का स्थान न केवल मस्तिष्क में है बल्कि मुख्यत: यकृत में है।

शराब पीने से जो गर्मी उत्पन्न होती है, उससे विशेषकर यकृत को नुकसान पहुँचता है। लीवर गर्मी को बाहर फेंकता रहता है। प्रत्येक चक्र का एक अधिकतम (optimum) तापमान होता है। यदि गर्मी उससे अधिक हो जाती है, तब वह बुखार होता है जिससे गर्मी से छुटकारा मिल सके। अत्यधिक गर्मी, चित्त संबंधित अंगों की कोशिकाओं को जला देती है और उनके कार्य को मंद कर देती है। जितने भी पैगंबर, (संत-महात्मा) आए, सबने शराब पीने को मना किया। यह भाग्य की विडंबना है कि, इस्लाम (Islam) के पैगंबरों ने शराब पीने की पूरी तरह से मनाही कर दी परन्तु अब हम पाते हैं, कि इस्लामिक देश जो पेट्रोल से मालामाल हो रहे हैं, वे सबसे अधिक शराब पीते हैं। शराब पीने से हमारे दूसरे चक्र में बाधा आ जाती है क्योंकि मद्यपान (शराब पीने) की आदत इंसान की रूह (आत्मा) के खिलाफ है।

यकृत की अव्यवस्था से दूसरे चक्र की ऊर्जा (energy) समाप्त हो जाती है। यकृत की समस्या शरीर के दाहिनी ओर फैल जाती हैं इसकी अति बढ़ी हुई दशा से आँख की दृष्टि (eye sight) पर असर होता है। यकृत-रोग (hepatitis) या लीवर की समस्या न होने पर भी उसकी होने की दशा जैसी

मिचली (nausea) और आलस्य (lethargy) इसमें हो सकती है। जिन लोगों के लीवर कमजोर और गरम होते हैं, वे ध्यान नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनका चित्त विचलित रहता है। उनके विभ्राँत चित्त उन्हें निर्विचारिता में स्थिर नहीं होने देते हैं। चित्त के बिना ध्यान (meditation) हो ही नहीं सकता। बिखरा चित्त दिमाग को अनेक दिशा में ले जाता है। सहजयोग की विधियों से लीवर की ठीक-ठीक देखभाल करने से चित्त के विचलित होने की समस्या का निदान किया जा सकता है। रुग्ण यकृत मनुष्य को बेचैन और चीखने-चिल्लाने वाले स्वभाव का बना देता है।

कृत्रिम व्यवहार (दिखावे की शान-शौकत) से, दूसरे चक्र की संवेदनशीलता घट जाती है। जो लोग किताबें पढ़ कर यह सीखते हैं कि कैसे बोलना चाहिए तथा कैसा आचरण करना चाहिए, उन्हें इस चक्र की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। (उनके स्वभाव में व्यावहारिकता नहीं होती। यह इस चक्र की कमजोरी की ओर संकेत करती है।) एक राजनेता के घर में, उसकी पत्नी जो मुख्य-अतिथि की बगल में बैठी हुई थी, अतिथि के हर बात के लिए लगातार बोलती जा रही थी- 'कितना सुन्दर है।' जब मुख्य-अतिथि ने कहा कि, उसके पिता का देहान्त पिछले महीने हो गया था। इस पर भी महिला ने कहा- 'कितनी अच्छी बात है।' इस प्रकार की झूठी व्यावहारिकता, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सौन्दर्य-बोध के विरुद्ध है। एक व्यावहारिक बात को अशिष्ट और बनावटी व्यावहारिकता के स्तर पर लाने से सच्चाई का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

जो दूसरों पर अपना प्रभाव डालते हैं, उन्हें उदासी का सामना करना पड़ता है। चेतन या अचेतन में दूसरों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करने से, उदासी ही हमारे हाथ लगती है। प्लास्टिक के फुलों से मनमोहक खुशबू नहीं आ सकती। जब कोई दूसरों के साथ रौब से व्यवहार करता है, वह उन लोगों

की मिठास का आनंद नहीं ले सकता। अधिक से अधिक वह एक सामाजिक तितली बन कर रह जाता है- जैसे समाज की एक संभ्रांत महिला या छैल-छबीला और इस प्रकार वह शुष्क और बेकार की हस्तियों को आकर्षित करती है।

शेक्सपियर ने ठीक कहा, 'अपने आप के प्रति वफादार बनो।' जब कोई परमात्मा के प्रति निष्ठावान होता है तब उसके अंदर के सद्गुण (sterling quality) चमकते हैं। 'सत्' ही पवित्र है, और उसकी पवित्रता ही सबसे बड़ी शक्ति है। वह 'गुरुत्वाकर्षण' है जो अपनी ओर लोगों को आकर्षित करती है। यह वही बल है जो समान गुणयुक्त, कल्याणकारी और ईमानदार व्यक्तियों को आकर्षित करता है। संसार में ईमानदारी से व्यवहार करने से आनंद और संतोष प्राप्त होता है।

हिमालय की तरई में एक प्रकार का सफेद फुल उगता है। उस पुष्प में सौन्दर्य और सुगंध दोनों गुण होते हैं परन्तु उसके पास मधुमक्खी नहीं जाती। एक अन्वेषणकर्ता पूछता है कि, सौन्दर्य और सौरभ दोनों से युक्त होने के बावजूद, उस फुल के पास मधुमक्खियाँ क्यों नहीं आतीं। फुल कहता है, मिठास केवल उन्हीं लोगों को मिलती है, जो अपने आपके हो जाते हैं। रास्ते चलते लोगों को बांट कर उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। मधुमक्खी फुल-दर-फुल उड़ती है और उनका मधु बटोर लेती है परन्तु किसी का आलिंगन नहीं करती है और न ही उन्हें धन्यवाद देती है।

अहंकार से मनुष्य में दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ होने तथा विद्या-बुद्धि में प्रख्यात होने की अभिलाषा होती है। अहंकार दाहिने स्वाधिष्ठान चक्र से दाहिने तंत्रिका-तंत्र (sun channel) से जुड़ा हुआ होता है। जो बड़े महत्त्वाकांक्षी तथा प्रतिस्पर्धी होते हैं, उनमें सहजता नहीं होती। यह, इससे

स्पष्ट हो जाता है, कि कला के किसी भी पक्ष में, अत्याधुनिक रचनाओं में सजीवता का अभाव ही दिखाई देता है।

एक असंतुलित कलाकार के कार्यों में वैयक्तिक तथा सामुदायिक दो प्रकार के संस्कार परावर्तित होते हैं। एक कवि की वाणी में, जब तक सजीवता की प्रक्रिया नहीं आती है, तब तक वह खोखली विचारधारा ही लगती है, जैसे एक प्रतिभावान् कवि, यदि टूटे हुए प्रेम-संबंधों की स्मृतियों पर ही काव्य की रचना करता है, तो वह किसी काम का नहीं है। जब सृजनात्मक शक्ति का प्रवाह मध्यनाड़ी से होता है, तब सामूहिकता को एक नया आयाम मिलता है। तब कलाकार, परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति का माध्यम (यंत्र) बन जाता है और यह सामूहिक विकास के लिए हितकर होता है, जैसे संत खलिल गिब्रान, विलियम ब्लेक ने ठीक कहा है, 'ईश्वर के लोग उपदेषक होंगे। उनमें समाज को अंधकार से निकालकर ईश्वर के साम्राज्य में लाने की शक्तियाँ होंगी।' इस प्रक्रिया से सामूहिकता, संस्कृति, परिपक्व होती है।

इसके विपरीत, जो संस्कृति मध्य मार्ग से हटकर एक-तरफा ही चलती है, वह विकास के मार्ग (evolution) से हट कर मर जाती है उदाहरण के लिए, साठवें दशक (1960) की संस्कृति, (जब नवयुवक अपने माँ बाप की सभ्यता से न जुड़ सके उसे छोड़ दिये) एक नई (असभ्यता) हिप्पीयुग की संस्कृति बन गई है। पारंपरिक संस्कृति जिसमें उत्थान का सकारात्मक आधार है, उसके बदले में नकारात्मक तत्व से वह अपने मरने का ही कारण मात्र बन कर रह गई है। आज भी हमारी कठिन परिस्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। क्रोध के आवेश में आकर अत्यंत शीघ्रता में पूर्ण प्रतिक्रिया हुई तथा हर पारंपरिक वस्तु का त्याग करने और नये तौर-तरीकों को अपनाने से हमें कोई पकड़ नहीं मिला। हम लोग स्पर्शज्या (tangent) की तरह बिना कोई मूल (पकड़) के,

बाहर फेंक दिए जा रहे हैं क्योंकि जीवन में मोड़ देने वाली कोई प्रेरणा नहीं है। (स्पर्शज्या का तात्पर्य, एक ही दिशा में ले जाने वाली शक्ति है, जो केवल स्पर्श करके आगे बढ़ जाती है परन्तु परिवर्तन लाने की प्रक्रिया में शामिल नहीं होती)। वह (स्पर्शज्या) सामूहिक अचेतन (collective unconscious) में पैदा नहीं होती। सामूहिक अचेतन सब प्रकार के सृजनात्मक कार्यों की जीवनी-शक्ति है। वह वृक्ष में विद्यमान रस के समान है और जब तक उसकी जड़, धरती माँ (प्रथम केन्द्र) में जमी नहीं रहती है, तब तक जीवन-रस (sap) का उसके भीतर संचार नहीं होता है। जब तक नदी समुद्र में मिल नहीं जाती तब तक वह केवल बाढ़ग्रस्त होकर बहती है। सभी तरह की रचनात्मकता को विकसित होने के लिए हमें उसके दरवाजे खोलने होंगे।आज (आधुनिक युग में) लोगों में अप्रत्याषित ऊर्जा है, परन्तु उसे रचनात्मक कार्यों की दिशा में मोड़ने की प्रेरणा नहीं दी जा रही है। वह मूल रहित है, किसी आधार के बिना, परमात्मा से संपर्क के बिना दिशाहीन है इसीलिए वह छितराकर नष्ट होती जा रही है। रचनात्मकता जिसमें परमात्मा का प्रेम परावर्तित न हो, वह स्वयं द्यातक है। वह उस बीमार वृक्ष के समान है, जो जीवित तो है पर उसमें फुल नहीं लगते हैं। जीवन के प्रकंपन-प्रवाह के बिना सृजनात्मकता शुष्क (नीरस) और धूमिल हो जाती है। चित्रकला का अर्थ कैनवस पर रंगों को उतारना ही नहीं है अपितु उससे भी अधिक कुछ और है, जो जीवन का पोषण करता है। वह सबके पारस्परिक आदान-प्रदान, सहकर्मिता, प्रेरणा और मेल-मिलाप का आधार है।

यदि कलाकार आत्मज्ञानी है, तो उसकी कला में, परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति, परावर्तित होती है, जो 'सामूहिक अज्ञात चेतना' है। जब कलाकार की कला और कैनवस (माध्यम) आपस मैं एकाकार हो जाते हैं तब अज्ञात चेतना के कार्य का सूत्रपात होता है। उस सहजता में, आत्मा की

अभिव्यक्ति स्वयं होती है। तब मनुष्य-रूपी यंत्रों (कलाकारों) में, परमात्मा का आशीर्वाद उतर आता है। ऐसी अनुपम कृति एक यादगार बन जाती है जो, एक अनोखी कला कृति, आनंद की वस्तु और हमेशा के लिए सौन्दर्य का प्रतीक हो जाती है। वह हमेशा के लिए प्रेरणा और चैतन्य का स्रोत बन जाती है, जैसे 'सिस्टीन चैपल' में माइकेल ऐंजलो की चित्रकारी (paintings) या मोजार्ट का संगीत। इस प्रकार की कला मनुष्य की आत्मा में हलचल पैदा कर देती है और विकास (evolution) के लिए ऊपर उठने की सीढ़ियाँ बन जाती हैं। वह, उस संस्कृति को सौन्दर्य-बोध की दिशा दिखाती है और उसे परमेश्वर की जीवंत शक्ति से सजीव कर देती है। ऐसी सभ्यता ही पनपती है; प्रगति करती है और विकसित होती है।

इसके सिवाय यदि कलाकार, कला-प्रवीणता का उपयोग, अपनी मानसिकता की छाप छोड़ने या अपने स्वयं की खुशी के लिए (व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना से) करता है, तब उसे परमात्मा की जीवनदायिनी शक्ति नहीं मिलती। केवल एक सनकी कलाकार, दूसरे सनकी कलाकार की कला की व्याख्या कर सकता है। आज की संगीत कला में पंक (punk) संगीत से ऐसे भयंकर तथा प्रदूषित प्रकंपन (horrible vibrations) पैदा होते हैं, जिनसे पेड़-पौधे भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसे शोर-शराबे वाले माध्यम से केवल दुर्बल और सनकी समाज की रचना होती है।

नाभि चक्र

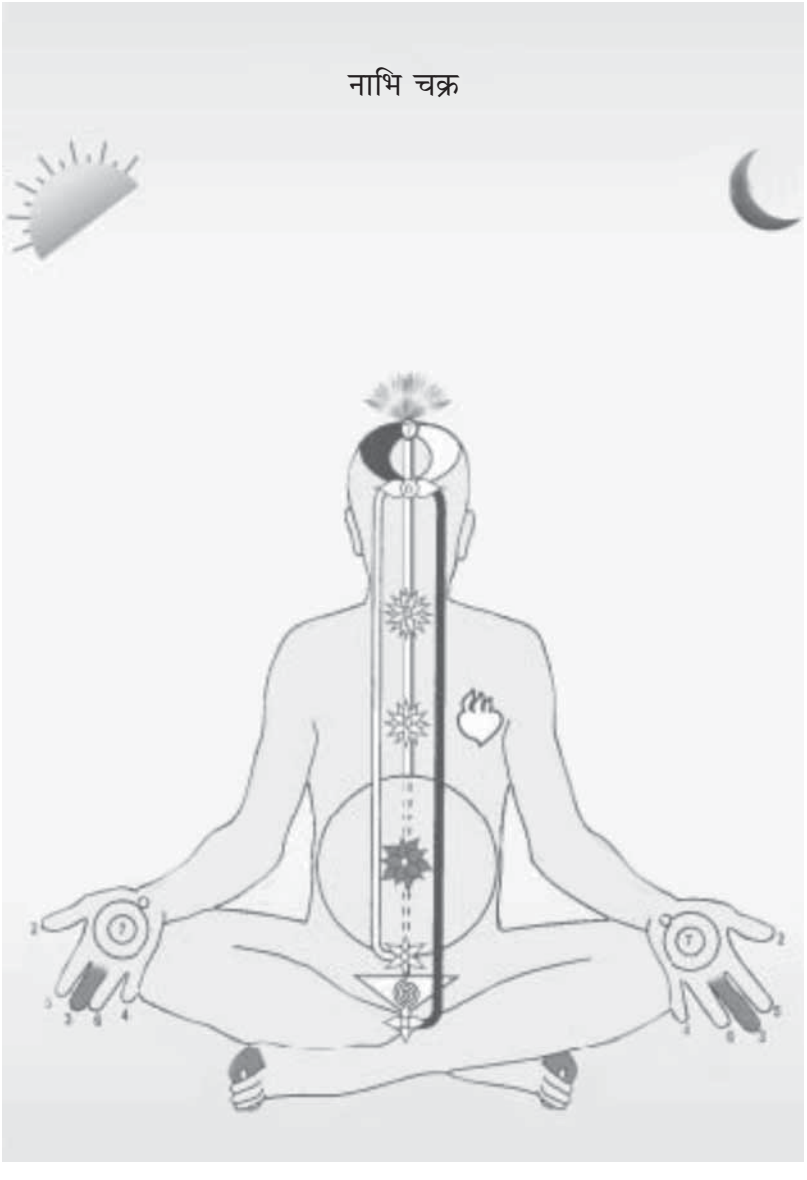

चित्र संख्या - 6

7
सद्गुण-धर्म और कल्याण

जनसंख्या की वृद्धि से समाज का विस्तार हुआ और राष्ट्र हुए। समाज को संगठित करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि सुचारु रूप से उसका संचालन करने के लिए, आवश्यक मार्गदर्शन हो। मनुष्यों में अपनी अलग-अलग पहचान की भावना से एक दरार पड़ गई, जिसने मानवता को मौलिक नियमों के अनुसार आपस में मिल-जुल कर रहने तथा अपने उद्गम को जानने से रोक दिया। तर्कशक्ति से इस बात का पता नहीं लग सका है, क्योंकि वह पर्याप्त परिपक्व नहीं है और दिव्य के ज्ञान से प्रकाशित नहीं होती है। ईश्वरत्व असीम है और वह तर्क के सीमित माध्यम द्वारा जाना नहीं जा सकता, फिर भी, आत्मा के सहारे उसका (divinity का) अनुभव किया जा सकता है। इसलिए चित्त को आत्मा पर केन्द्रित करने की आवश्यकता है। चेतना को सूक्ष्म-केन्द्र में उतारने के लिए, व्यक्ति को भी सूक्ष्म होना चाहिए। आचार-संहिता धर्म है वह इस क्षेत्र में, मनुष्य की सहायता करता है। श्री माताजी निर्मला देवी द्वारा धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गई है -

'कार्बन के चार स्वतंत्र आयाम (valency) हैं। सोने का गुण है कि उसकी चमक नहीं जाती है। उसी प्रकार धर्म में भी चमकने वाले गुण (सद्गुण) हैं, जो मानव सृष्टि को संभालते हैं। अमीबा (amoeba) से मनुष्य का विकास हुआ है। यह (विकास) उसके धर्म द्वारा हुआ है, जो उसके विकास की आचार-संहिता (नियम) है। जीवन की आचार-संहिता (code of laws) हमारी आध्यात्मिक वृद्धि की रक्षा करता है तथा उसका पोषण करता है।' इसलिए विकास (evolution) के तीसरे चरण में मनुष्य को धर्म की शक्ति दी गई जिसे, दस महा-आदेश (Ten commandments) कहते हैं। (चित्र संख्या-6 देखें)

सजग रह कर समझ-बूझ से धर्म के इन नियमों का पालन करना मनुष्य की सुरक्षा और उसके आध्यात्मिक-उत्थान का आधार है। उनकी लापरवाही से कैन्सर जैसी घातक बीमारी के बीज पड़ जाते हैं। यदि कैंसर फैल जाए तो, मानवता और प्रकृति दोनों का विनाश हो सकता है।

तीसरे चक्र को नाभी चक्र कहते हैं। यह हमारे कल्याण (welfare) का केन्द्र है। जैसे-जैसे सृजनात्मक शक्ति आगे की ओर विकसित होती गई, मानव ने प्राकृतिक साधनों का उपयोग सफलतापूर्वक किया। इससे प्रगति हुई और भौतिक वस्तुओं की वृद्धि हुई, जिससे धन प्राप्ति की लालसा बढ़ी। प्रगति (समृद्धि), विकास के लिए एक आवश्यक कदम है। मनुष्य के सामान्य जीवन में स्थिरता स्थापित करने के लिए धन, एक महत्वपूर्ण माध्यम है, जिससे जरूरतों और इच्छित वस्तुओं का आदान-प्रदान किया जाता है। यदि व्यक्ति के पास आवश्यकता पूर्ति का साधन न हो तो, उसकी इच्छा आध्यात्म के बदले, धन-प्राप्ति को मुख्य समझ कर उसमें लग जाती है। परन्तु जब उसका चित्त केन्द्रीय नाड़ी (central channel) की ओर जाता है, तब उसमें संतुलन की स्थिति आ जाती है। इससे मनुष्य अपनी पुरानी लोभ-लालसा को छोड़कर आध्यात्म की खोज में खड़ा हो जाता है। परन्तु इसके लिए उसे सांसारिक उत्तरदायित्वों को त्यागने की आवश्यकता नहीं है।

परन्तु कभी-कभी हम भूल जाते हैं; जब हमारे पास एक वस्तु आ जाती है, तब दूसरी वस्तु की इच्छा आ जाती है और अक्सर हम, इस भौतिकता में खो जाते हैं। धनवान होना कोई अपराध नहीं है परन्तु वास्तविक समस्या तो धन की लालसा से चिपके होने में है, जैसे कृपणता (miserliness) या खर्च न करने की प्रवृत्ति और धन एकत्र करने की प्रवृत्ति (hoarding)। ये स्वार्थी और अविकसित-बुद्धि का परिचायक है, जिसे जीवन की मौलिक सच्चाई का ज्ञान नहीं है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया-उसे अधिक से अधिक इसलिए कमाना चाहिए ताकि दूसरों को अधिक से अधिक दे सके। और अंत में, यदि एक निर्धन व्यक्ति को धन की आवश्यकता है और किसी के पास उसे देने के लिए धन नहीं है, तो उसकी सहायता कैसे की जा सकती है। धनवान और निर्धन दोनों उस महान परमात्मा के ही अंग हैं। इसलिए यदि धनवान निर्धन व्यक्ति को देता है तो इससे समाज में संतुलन आता है परन्तु यदि धनी व्यक्ति ऐसा नहीं करता है तो असमानता और असंतुलन पैदा होता है। गरीब, और गरीब तथा धनी और धनी हो जाता है। समस्या का समाधान न तो साम्यवाद में है और न ही पूँजीवाद में। इसका समाधान, मनुष्य के दृष्टिकोण के परिवर्तन में है। एक परिपक्व और संतुलित व्यक्ति की सही समझदारी, सामूहिक दृष्टिकोण (उदारता) को नया रूप देती है (दूसरों के साथ बाँट कर उपभोग करना उदारता है)। उदाहरण के लिए, आपस में बाँटने का काम, कितना अच्छा लगता है और सबको प्रसन्नता प्रदान करता है। जबकि एक कंजूस (avaricious) व्यक्ति समूचे समाज के लिए रुग्ण और खतरनाक साबित होता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार धन का रहस्य, श्री लक्ष्मी जी (धन की देवी) द्वारा सिखाया जाता है। वे एक हाथ से लेती हैं और दूसरे हाथ से देती हैं। हमारी दाहिनी नाभि का गुण, जो यकृत का नियंत्रण करता है, धन-संपदा के क्षेत्र में हमारे कार्यों का प्रतीक है, जैसे वित्तीय-व्यवस्था, व्यापार तथा भविष्य की योजना, स्पष्ट विचार और तर्क। खराब भोजन (तैलयुक्त पदार्थ, अल्कोहल और नषीली वस्तुएँ) तथा अत्यधिक सोच-विचार से दाहिनी नाभि पर बुरा असर पड़ता है। इसके परिणाम हैं- बेमतलब के विचार, भविष्य का सामना करने की असमर्थता, अनियमित जीवनशैली, कमजोर वित्तव्यवस्था तथा स्पष्टता की कमी।

गृहस्थ-जीवन की स्थिरता, बाईं नाभी-चक्र पर प्रभाव डालती है। यदि

पत्नी को घर में सम्मान नहीं मिलता है या घरेलू समस्याएँ बनी रहती हैं तो, बाईं नाभि में बाधा आ जाती है। इस चक्र की बाईं ओर से मुख्यत: मनुष्य के भीतर शांति और संतुष्टि आती है। मनुष्य के भीतर शांति, संतुष्टि और तारतम्यता (harmony) की स्थिति से आगे उसका आध्यात्मिक-उत्थान तथा संतुलित व्यक्तित्व का विकास होता है। एक क्षुब्ध (अशांत) या अधिक तेजी से चलने वाली बाईं नाभि, मनुष्य के व्यक्तित्व को संत्रास (panic) की स्थिति में डाल देती है। ऐसी दशा में वह संतुलन खो बैठता है और बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठता है। लम्बे समय से चली आ रही चिंता से मनुष्य के भीतर की शांति और आत्मनियंत्रण नष्ट हो जाता है। कई हालातों में समस्या की कल्पना ही चिंता का कारण बनती है। जो लोग विश्राम नहीं कर सकते, वे दूसरों को भी विश्राम नहीं करने देते। वे आनंद में बाधा डालते हैं। उनकी दौड़-धूप के बावजूद भी उनकी उपलब्धि अक्सर दुखदायी (negative) ही होती है। धैर्य धारण करना बाईं नाभि के लिए दर्दनाशक मलहम की तरह है। धैर्य न केवल दूसरों के लिए, अपितु अपने खुद के लिए भी होना चाहिए। जब हम अपनी आशा के अनुसार ऊपर नहीं उठ पाते हैं तब हम प्राय: निराश हो जाते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि मनुष्य मशीन (यंत्र) नहीं है, जो घड़ी के समान लगातार काम करता रहे। हमारे स्वभाव और गुण, प्रकृति-प्रदत्त उपहार हैं जिनका विकास, अनेक जन्म-जन्मांतरों के बाद हुआ है। नि:सन्देह मानवीय प्रयत्न दोषों को बाहर निकाल कर फेंक सकता है, जैसे, हीरे को तराश कर चमकाना या नये गुणों का समावेश करना। परन्तु यह प्रक्रिया, किसी समय की सीमा में नहीं होती। एक हद तक प्रकृति स्वयं अपना रास्ता चुनती है और मनुष्य को वह विकासशील प्रक्रिया को स्वीकार करना चाहिए। उसे नियति समझने की गलती नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इसमें भाग्य के सहारे छोड़ने की कोई बात नहीं है। इसके विपरीत, अपने होश-हवास में रह कर समस्याओं के निदान का प्रयत्न करना चाहिए। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है, 'तुम्हें अपने निर्दिष्ट कार्य

को ठीक तरह से करना चाहिए परन्तु फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' यदि हमें अपने आपको परखना है, तो कम से कम हमारे अन्दर इस बात का अधिक संतोष होना चाहिए कि हमने उचित प्रयत्न किए हैं। इस जानकारी के साथ खुशी से जीना संभव है, परन्तु अपने प्रयत्न को जारी रखने का दृढ़ संकल्प हो, साथ ही धैर्य भी हो।

शांतिपूर्ण बाईं नाभि से, केवल व्यक्तिगत आंतरिक शांति ही नहीं, बल्कि दूसरों को भी स्थिर करने की शक्ति मिलती है। हर हालात में उन्नति के लिए शांति पहली आवश्यकता है। यह चक्र आपस में ऐसा गुँथा हुआ है कि इस चक्र से आठ प्रकार के वरदान (अष्टलक्ष्मी द्वारा) हमें मिलते हैं जैसे समृद्धि, कल्याण, प्रतिष्ठा, आध्यात्मिक-उत्थान, शुद्ध-विद्या, घरेलू और सामूहिक आनंद, धन और सफलता।

शारीरिक स्तर पर यदि उदर (पेट) के कार्य में गड़बड़ी हो तो, पाचन-क्रिया और आत्मसात करने की प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि तीसरा चक्र पेट तथा यकृत के ऊपरी भाग के कार्यों का नियंत्रण करता है। पेट का ख्याल रखना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। भोजन के प्रति दृष्टिकोण और खाने-पीने की आदतें, पाचन-रस (digestive juice) तथा रस उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों (glands) पर असर डालती हैं। यदि कोई जल्दी में है, क्रोधित या चिंतित है, तब भोजन ठीक तरह से नहीं पचता, क्योंकि पेट की माँस-पेशियाँ तनाव-युक्त हो जाती हैं और भोजन पर स्वतंत्र होकर कार्य नहीं करतीं। उसी प्रकार भोजन के बारे में अधिक सोच-विचार करने से भी पेट आवश्यकता से अधिक उत्तेजित हो जाता है और ऊर्जा के प्रवाह में बाधा डालता है। जब तक भोजन, स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त और पौष्टिक है, तब तक किसी को भोजन की अधिक चिंता नहीं करनी चाहिए। संतुलित भोजन का आनंद लेना बड़ा महत्त्वपूर्ण है, ताकि भोजन आराम से पेट में जा सके और पेट में उत्पन्न पाचन-रस से अच्छी तरह मिल सके। शांतिपूर्वक भोजन करना एक कला है-

ध्यान करने जैसा है।

पेट बहुत ही नाजुक (sensitive) अंग है। कल्पना कीजिए कि एक तरल पदार्थ बनाने की मशीन (liquidiser) को कितनी अधिक विद्युत-शक्ति की आवश्यकता होती होगी? पेट के प्रति अन्याय होने के बावजूद वह कितना बड़ा काम (संपूर्ण शरीर का पोशण) करता है। जबकि तरल पदार्थ बनाने की मशीन, यदि उसकी एक छोटी सी पिन हिल जाए, तो काम नहीं करती।

बिना सोचे-विचारे व्रत (उपवास) करने से प्राय: नाभी के नियम और शांतिपूर्वक कार्य करने की क्षमता नष्ट हो जाती हैं। व्रत करने से भगवान् तक नहीं पहुँचा जा सकता। पेट को नियमित रूप से, समयानुसार उचित भोज्य-पदार्थ चाहिए। पेट से कोई खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। स्वास्थ्य के लिये एक विशेष परिस्थिति में व्रत करना पड़ सकता है जो खास देख-रेख में हो, परन्तु इसका कोई आध्यात्मिक महत्त्व नहीं होता है। उपवास करने से क्या फायदा, यदि मन में बार-बार भोजन का विचार आता रहे। जब शरीर को भोजन की आवश्यकता नहीं होगी तो वह संकेत दे देगा। सहजयोग, सहज तरीके का रास्ता है तथा वह किसी प्रकार के आत्म-नियंत्रण के अभ्यास तथा प्राकृतिक नियम को तोड़ने के विरुद्ध है। परमात्मा ने हमारे सामने भोजन तैयार करके रख दिया है, हम उनके निमंत्रण को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं? जब लोग उनके नाम पर उपवास करते हैं, तो उन्हें सबसे बड़ी चोट पहुँचती है। क्या हम जन्म-दिवस मनाने के अवसर या विवाहोत्सव पर या त्यौहार के उपलक्ष्य में उपवास करते हैं?

आइये, हम उपनिषद् के शिक्षापूर्ण वक्तव्य को ध्यान से सुनें-
सारा संसार परमात्मा का वस्त्र है।
उसका परित्याग करो
तब उसे वापस पाओगे।

8
सामूहिकता

प्राचीन काल के भविष्य-द्रष्टा, संत-महात्मा संपूर्ण विश्व को पदार्थ-रूप में संघनित (condensed) शक्ति से बना हुआ मानते थे। इसलिए सभी रचनाएँ या आकृतियाँ एक ही सर्वश्रेष्ठ परम-शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ मानी जाती हैं। जगत् की सब वस्तुयें और कुछ नहीं है, बल्कि दोलन करती बहुआयामी गतियों की शक्ति के केन्द्र हैं, जो विभिन्न प्रकार के मेल-जोल से बनी हुई हैं।

नई भौतिकी (new physics) अब यह नहीं मानती है कि, संपूर्ण विश्व, एक बड़े पदार्थ के अलग-अलग टुकड़ों से मिलकर बना है, बल्कि यह केवल एक पूर्ण (जिसके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है) के विभिन्न अंग हैं जो आपस में एक दूसरे से संबंध रखते हैं। संसार, इन सभी भागों से मिलकर बुना हुआ एक तंत्र-जाल (network) है जो एक दूसरे पर आश्रित है। जैसा कि अमेरिका के केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के विद्वान हेनरी स्टैप (Henry Stapp) कहते हैं- मौलिक कण (elementary) या सूक्ष्मतम अणु (परमाणु) स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला एक अविभाजित अस्तित्व (entity) नहीं है। तत्वत: वह अपने से अलग बाहर की दूसरी वस्तुओं से संबंध रखने वाला, तथा उसी जाति का है।

जीवित प्राणी अलग-अलग स्वतंत्र अस्तित्वों के तंत्र या संस्थान हैं। उनका जीवित रहना, (कार्यशील रहना) पर्यावरण के साथ मेल-जोल पर निर्भर है। पर्यावरण स्वयं एक जीवित प्रक्रिया (living process) है तथा कार्बनिक और अकार्बनिक द्रव्यों के आकारों से मिलकर बना है। (कार्बनिक

द्रव्य वे हैं जिनमें कार्बन तत्व की बहुतायत होती है और जिनसे प्राणियों के अंग बनते हैं इस प्रकार संपूर्ण पर्यावरण (ecosystem) आपस में मिलाकार बुना हुआ ताना-बाना (network) है जो अपने सभी स्तरों पर सतत रूप में एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।

इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि-ब्रह्मांड के ढाँचे के हर स्तर पर अणु-परमाणु से लेकर आकाश-गंगा (galaxies) या अनगिनत तारों के समूह तक, सूक्ष्म जीवाणु (bacteria) से मनुष्य जाति तक, यह गतिशीलता या क्रियाशीलता, कैसे कार्य करती है? इससे हमारे घनिष्ठ संबंधों, पर नया प्रकाश पड़ता है जो ब्रह्मांड के कार्य-कलाप तथा पारस्परिक निर्भरता द्वारा संचालित होते हैं।

यह संबंध मनुष्य की व्यक्तिगत और धरती दोनों की बुद्धि तथा संपूर्ण ब्रह्मांड में ग्रह-नक्षत्रों को चलाने वाली बुद्धि को एक सूत्र में बाँधता है।

ऐसा सच माना जा सकता है कि-व्यक्ति की बुद्धि तथा पर्यावरण दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा वे ब्रह्मांड की बुद्धिमत्ता (intelligence) से प्रभावित होते हैं अर्थात् हर व्यक्ति का मन दूसरे व्यक्ति के मन से प्रभावित होता है और ये दोनों भी पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। उसके (पर्यावरण के) नकारात्मक प्रभाव का परिणाम, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक अव्यवस्था के रूप में सामने आता है।

इस प्रकार मनुष्यों में जैविक, मानसिक, भावनात्मक तथा सांस्कृतिक संबंध, सामूहिक प्रक्रिया से अलग नहीं किए जा सकते। सहजयोग के सामूहिक ध्यान से इस तथ्य का सत्यापन किया जा सकता है। प्रायः व्यक्तिगत पकड़ या समस्या, सामूहिकता की प्रकंपन शक्ति (power of vibrations) से सुलझ जाती है। भले ही, साधक अकेले ध्यान करे, परन्तु

सामूहिकता से उसे अधिक लाभ होता है। अत: व्यक्तिगत विकास के लिए सामूहिकता में रहना आवश्यक है।

हर एक जीवाणु जो केवल अपनी सुरक्षा के विषय में सोचता है। वह बिना सोचे-समझे अपने पर्यावरण को नष्ट करता है और अंतत: अपने आपको भी। सुरक्षा की ईकाई तब एक अकेले अस्तित्व की ही नहीं है, बल्कि वह संगठन, उसके आकृति की भी है, जिसे एक जीवाणु अपने पर्यावरण के साथ सक्रिय होकर अपनाता है। जो कुछ जीवित बचता है वह पर्यावरण में स्थित जीवाणु और सामूहिकता है (कहने का तात्पर्य यह है कि पर्यावरण से अलग होकर जीवाणु जीवित नहीं रह सकता क्योंकि उसे पर्यावरण से ही पोषण प्राप्त होता है। इसी तरह व्यक्ति सामूहिकता से पोषित होता है)।

लोगों के समूह, समाज और संस्कृति, सामूहिक बुद्धि से काम लेते हैं, इसलिए उनमें सामूहिक चेतना भी है। 'जंग' ने कल्पना की थी कि सामूहिक बुद्धि या सामूहिक जीव में भी सामूहिक अज्ञात चेतना है। व्यक्तिगत रूप से हम सब, इन सामूहिक आदर्शों (patterns) द्वारा प्रभावित हो कर विकसित होते हैं और कुछ हद तक उन्हें व्यवस्थित भी करते हैं। आइये, अगले अध्याय में इसकी जाँच करें कि-कैसे ?

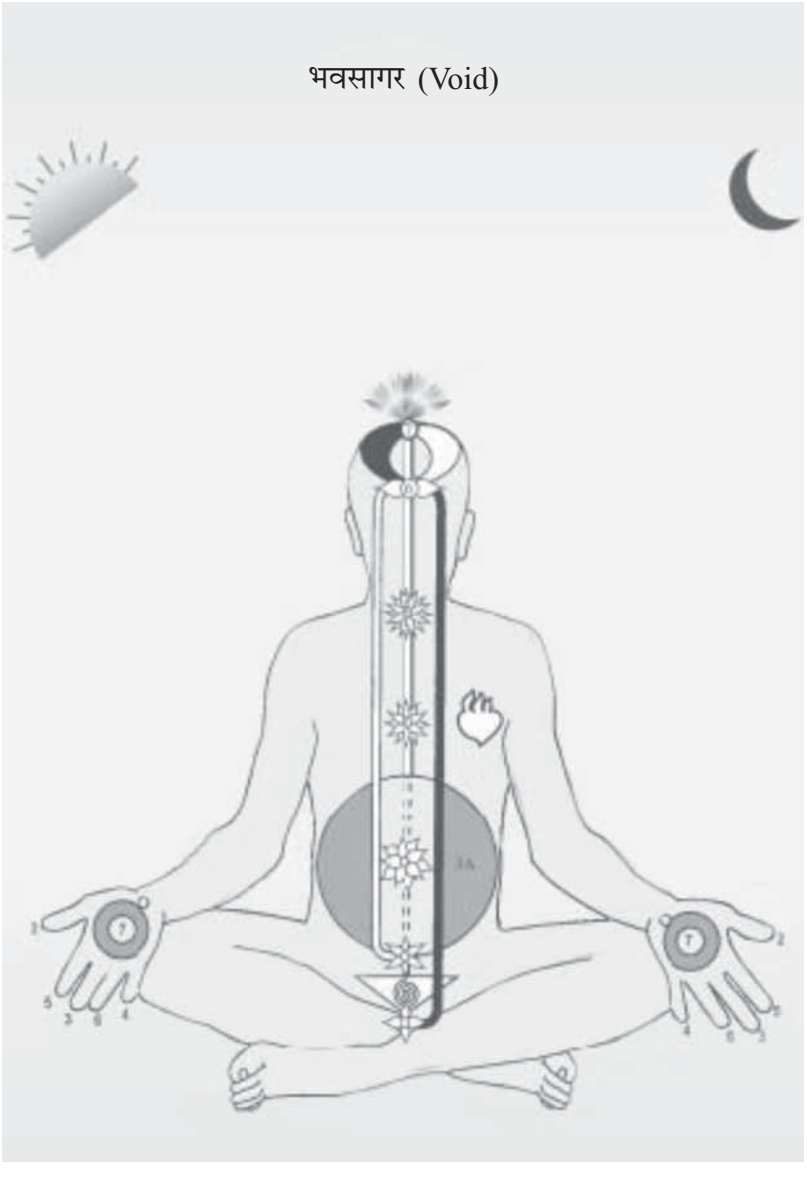

चित्र संख्या - 7

9
भवसागर

दूसरे और तीसरे केन्द्र के चारों ओर एक खाली जगह (patterns) है जिसमें संसार के अस्तित्व के सभी पहलुओं का समावेश है, जैसे-अनेक प्रकार के व्यक्तित्व, हमारे अस्तित्व पर ग्रहों और गुरुतत्वीय बल का प्रभाव, हमारे आचार-विचार के आदर्श-धर्म और भौतिक आधार। यह क्षेत्र बाहर से प्रभावित होता है। यह उस रिक्त स्थान का प्रतिनिधित्व करता है जो हमारी चेतना के स्तर को, जब हम अज्ञान की स्थिति में रहते हैं, सत्य से अलग करता है। जब कुंडलिनी शक्ति इस खाली जगह को भर देती है, तब हमारा चित्त, माया या भ्रम के सागर से बाहर निकल कर सत्य के प्रकाश में आ जाता है।(चित्र संख्या-७ देखें)

जैसे-जैसे मनुष्य-जाति ने प्रगति की है और उसकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हुई है, उसका मन, सृष्टि की महानता को देखकर, भयभीत और आश्चर्यचकित हो गया कि 'यह सब कैसे हुआ?' फिर, जैसे-जैसे साधक (जानने का इच्छुक या जिज्ञासु) के मन में सृष्टि को जानने की इच्छा गहरी हुई, उसने अनुभव किया कि उसकी उत्पत्ति के पहले की सृष्टि की रचना का ज्ञान पा सकना उसके लिए अपने आप संभव नहीं है। ऐसी दशा में, उसने अपने मार्गदर्शन के लिए परम शक्ति की प्रार्थना की, जिसने सृष्टि की रचना की थी। जब हम किसी दूसरे नगर में जाना चाहते हैं, तब हम ऐसे किसी व्यक्ति से पूछते हैं, जो वहाँ पहले गया हुआ होता है और उस शहर के बारे में जानकारी रखता है। उसी प्रकार अध्यात्म की खोज में जाने वाले साधक को मार्गदर्शन के लिए एक जानकार या ज्ञानी (enlightened) गुरु

(master) की आवश्यकता होती है। जब हम प्रार्थना करते हैं, तब हम क्या कहते हैं? हम लोग अधिकतर, द्रव्य माँगते हैं, या कहते हैं- हे प्रभो! हमारा मार्गदर्शन करो या हमें यह या वह या और कोई दूसरी वस्तु दो। परन्तु जब हम वास्तव में मार्गदर्शन के योग्य हो जाते हैं, तब वह, स्वयं हमारे पास आता है और उस विषेश क्षण में गुरुतत्व की जागृति होती है। अनंतकाल से आदिगुरु (primordial master) कार्यरत रहे और वे महान गुरुओं के रूप में अवतरित हुए जैसे, लाओत्से, दत्तात्रेय, राजा जनक, सुकरात, मोजेज़ (मूसा, कन्फ्यूसियस, जोरोस्टर (जरथुस्त्र), पैगंबर मोहम्मद, नानक और शिरडी के साईंनाथ (19वीं सदी)। ये गुरु, मनुष्य-जाति के आध्यात्मिक विकास के लिए अलग-अलग समय में अवतरित हुए और ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की नींव रखी।

दुर्भाग्यवश आज अनेक धोखेबाज और झूठे गुरु पैदा हो गए हैं जो अपने आपको सच्चे गुरु का अवतार बताते हैं। एक भ्रमित (भटके हुए) साधक के लिए सच्चे गुरु की पहचान करना कठिन है। हम उस गुरू को ढूंढ़ते हैं, जो हमारे अहं को संतुष्ट करता है, या जो हमारे अहं-जनित विचारों को अच्छा लगता है। वास्तव में जब वह (अगुरु) परमात्मा की बातें करता है, तब हम उसके बारे में निश्चिंत होकर, उसे ही अपना आध्यात्मिक गुरु मान लेते हैं और शीघ्र ही उसके दास बन जाते हैं। (कहावत है-गुरु बनाए जान के, पानी पीए छान के।) गुरुओं का धंधा आज एक बड़ा व्यवसाय बन गया है। ये ढोंगी गुरु, लोगों को प्रोत्साहन देते हैं और उनकी कमजोरी का फायदा उठाते हैं। वे अपने अहंकार से मनुष्य भवसागर (void)(नाभि के चारों ओर का भाग) में बाधा डालते हैं। हम उनकी बनावटी चमक-दमक वाले व्यक्तित्व, आकर्षण तथा मनगढ़ंत बातों की चपेट में आ जाते हैं। पर अपनी स्वयं की इच्छा से अपने आपको उनके पिंजड़े में डालने के बाद, अपने झूठेपन की

रस्सी के सहारे ऊपर नहीं निकल सकते। महात्मा ईसा (christ) ने भी इस प्रकार के प्रेतावेष (possession) के बारे में कहा था। दुष्ट आत्मायें मनुष्य को अपनी गिरफ्त में तब ले लेती हैं जब वह उनके अज्ञात क्षेत्रों में खो जाने के लिए आमादा हो जाता है। खासकर यदि साधक (seeker) जब कमजोर और संवेदनशील (vulnerable) हो और जिसमें अंदरूनी ताकत न हो तो वह (व्यक्ति) गलत किस्म के इंसान से चिपक जाता है, जो दुष्ट आत्माओं को इस्तेमाल करता है। परजीवी जन्तुओं (parasites) की तरह दुष्ट प्रेतात्माएँ मनुष्यों को अपने वष में कर लेती हैं, क्योंकि अपनी भूख मिटाने के लिए मनुष्य के मन की आवश्यकता होती है। वे मनुष्य के मन में, अपनी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रवेश करती हैं। उदाहरण के लिए, एक शराबी भूत (मृतात्मा) को शराब की इच्छा होती है, परन्तु वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता, तब वह उस आदमी को अपने वश में कर लेता है जो शराब पीता है। उसके बाद वह अपने शिकार के मन को, वश में कर लेता है और उसे अधिक से अधिक शराब पीने के लिए उत्तेजित करता है। शिकार (व्यक्ति) के मन की अनुभूति से वह (भूत) अपनी खुद की इच्छा की पूर्ति करता है। इस तरह मृतक UPIs (units of psychic interference) दुर्बल व्यक्तियों को अपना माध्यम बनाते हैं और साथ की वे लोगों में मानसिक उथल-पुथल (गड़बड़ी) पैदा करते हैं। बाईबिल में जीजस क्राइस्ट अक्सर लोगों के भूत झाड़ कर (exercise) उनको पवित्र करने की बात करते हैं। उन्होंने पागलों के भीतर से शैतान को निकाल कर गैलिली समुद्र के किनारे फेंका और उनकी चेतना (होश-हवास) को फिर से उन मृतात्माओं के चंगुल से निकाल कर वापस लाए।

अमरीका के एक अग्रगण्य मनोवैज्ञानिक डा एल्मर ग्रीन जो 'मेनीन्जर फाउंडेशन, कैन्सास' में शोधकर्ता थे और उन्होंने एक भौतिक-शास्त्री की

हैसियत से 15 साल से अधिक समय तक 'राकेट और गाइडेड मिसाइल' अनुसंधान में कार्य किया, उनकी खोज से जो बातें मालूम हुईं वे इस प्रकार हैं-

अनेक चेतावनियों के बावजूद, इन अज्ञात क्षेत्रों में निरंतर अनुसंधान करने वाला एक वैज्ञानिक अपने आपको उन भीतरी तथा अज्ञात हस्तियों (सत्ताओं) के ध्यान में लाता है, जो सामान्य परिस्थितियों में, मनुष्यों पर बहुत कम ध्यान देते हैं। भीतरी अनुसंधान के संयंत्रों से इन अज्ञात सत्ताओं के बारे में जानकारी मिली कि, ये ऐसी सत्ताएँ (entities) हैं जिनके शरीर पूरी तरह से, भावात्मक, मानसिक और आकाशीय (etherial) तत्वों से मिलकर बने हैं। वे संयंत्र बताते हैं कि विकास के इस स्तर पर वे एक साधारण मनुष्य की तुलना में मनोवैज्ञानिक रूप से बेहतर नहीं हैं। वे विभिन्न स्वभाव वाले हैं उनमें से कुछ ईर्ष्यालु, दुष्ट और चालाक हैं। जब कोई खोजकर्ता उनके क्षेत्र में प्रवेश करता है, तब उसे उसके पहले से सुरक्षित कोष्ठ (cocoon), जो मन और भाव तत्वों की दीवारों से मिल कर बना होता है, से निकलने का जब मौका मिलता है, तब वे शोधकर्ता से उल्टी दिशा में चलते हैं और उसके व्यक्तिगत सूक्ष्म क्षेत्र (गहराई) में घुस जाते हैं। यदि अनुसंधानकर्ता अपने व्यक्तित्व के घेरे से मुक्त नहीं है तो कहा जाता है कि वे (सत्ताएँ) उसको, अपने मनोरंजन के लिए अनेक मजबूरियों का फायदा उठा कर पीड़ित कर सकती हैं। अत्यंत नाजुक हालत में उसकी सामान्य रूप से चलने वाले तंत्रिका-तंत्र को तितर-बितर भी कर सकते हैं। ऐसा वे मस्तिष्क पर चक्रों द्वारा नियंत्रण पाकर करते हैं। बहुत से मानसिक रोगियों ने दावा किया है कि वे सूक्ष्म सत्ताओं (entities) के वशीभूत हो जाते हैं। परन्तु डॉक्टर लोग ऐसी बातों को उनका व्यावहारिक प्रमाद, अवचेतना का शुद्ध प्रक्षेपण समझ कर और आगे इसकी जाँच नहीं करते।

उस अनुसंधानकर्ता का संकेत बड़ा मनोरंजक है कि वे (entities) चक्रों के द्वारा मस्तिष्क पर असर डालते हैं। यह धारणा कि, आंतरिक हस्तियाँ (indigenous entities) उन (मनुष्यों) पर कार्य करती हैं-उसमें तथा ईसाई धर्म की पारंपरिक उपदेशों में समानता है, कि दुष्ट आत्मा (evil spirit) मनुष्य के इंद्रिय और आत्मा के बीच के दरवाजे पर जम कर खड़ी हो जाती है और प्रहार, आत्मा की गहराई में न करके, झूठी कल्पना पर करती है।

इस तरह लोग मूर्छा की अवस्था, या मृतात्माओं से सलाह-मशविरा करने की स्थिति में जाते हैं। अनेक लोग दावा करते हैं कि वे जीवात्माओं से संपर्क कर सकते हैं। उनमें जो चीज सामने न हो, उसे देखने की शक्ति (clairvoyance) है और उनमें अतीन्द्रिय-शक्तियाँ हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि किस प्रक्रिया से उनमें यह विशेषता आई है और न ही वे अपनी यह विशेषता दूसरों को दे सकते सकते हैं। इसका कारण है कि ये विशेषतायें, उनकी स्वयं की अपनी नहीं हैं, बल्कि उनको वषीभूत करने वाले भूतों या मृतात्माओं UPIs की हैं।मनुष्य का सामान्य गुण (faculty) किसी रहस्य से छिपा नहीं रहता है। हर कोई उससे परिचित होता है और सरलतापूर्वक उन्हें समझाया जा सकता है। UPIs द्वारा इस प्रकार वशीभूत होना अत्यंत खतरनाक है, क्योंकि इससे अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिका-तंत्रों का आपसी ताल-मेल का कार्य बंद हो जाता है। शारीरिक शक्ति को निचोड़कर वह UPIs शरीर को शक्तिहीन कर देता है। इससे और भी बढ़कर अपनी इच्छा को साधक पर लाद देता है, जिससे वह सुचारू रूप से चलने वाले शारीरिक कार्य में बाधा डालता है फलस्वरूप इससे जानलेवा किस्म की बीमारियाँ हो जाती हैं। UPI व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में अपना विचार लाद कर मस्तिष्क पर काबू पा लेता है और उसके सामान्य कार्यों को रोक देता है। इसके परिणामस्वरूप मृगी या मानसिक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।

बाईं ओर के अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र में उन सभी के अवशेषों को संचित करने की शक्ति होती है, जो पहले से मर चुके हैं। वह व्यक्ति को अवचेतन मन के भंडारागार से जोड़ता है और फिर सामूहिक अवचेतना (भूतलोक या परलोक) (collective subconscious) से भी जोड़ता है। मस्तिष्क के पीछे इस नाड़ी के अग्र भाग में प्रति-अहं (super ego) एक गुब्बारे के समान स्थित रहता है। मन के संस्कारों को अनुकंपी तंत्र द्वारा संचित करके वह (अति अहं) फुल कर बढ़ जाता है। यदि तनाव भारी हो जाता है तो वह अति-अहं को कई टुकड़ों में तोड़ देता है। इसके बावजूद भी यदि कोई आदत के अनुसार अत्यधिक दबाव डालता है, तो वहाँ शून्य या खाली जगह बन जाती है। और यह सामूहिक अवचेतना (भूतलोक) से दूसरी मृतात्माओं को शून्य स्थान में खींच लेता है। इसलिए सत्य की खोज में यदि कोई व्यक्ति और आगे प्रयत्न करता है तथा मन के सोच-विचार में फँस जाता है-जैसे थोपा गया संयम, ध्यान या मन की भावुकता से लगाव, तब इन सबसे बाईं अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र अति-अहं से प्रभावित होकर, व्यक्ति को सामूहिक अवचेतना (परलोक) से जोड़ देती है जहाँ पर हर किस्म की मृत आत्माएँ, अच्छी, बुरी संत आदि निवास करती हैं। ये मृतात्माएँ अवसर पाते ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के जरिये अपने आपको व्यक्त करने लगती हैं। इससे उस व्यक्ति को सिद्धि प्राप्त होती है या अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है। वास्तव में, ये विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म (मृतक) व्यक्तित्व हैं जो मनुष्य पर उसके अति-अहं द्वारा शासन करते हैं, या उसे अपना गुलाम बना कर (अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए) उससे काम लेते हैं।

एक और भी तरीका है, जिसका इस्तेमाल, बिना प्रयास के जाने-माने गुरुओं (शिक्षकों) द्वारा किया जाता है। इससे वे चक्रों को बाईं तंत्रिका-तंत्र की ओर घुमा देते हैं और इससे व्यक्ति को अवचेतना (sub-consciousness)

में डाल देते हैं। इस तरीके से इच्छुक व्यक्ति मूर्छा में चला जाता है या उन मृतात्माओं की सत्ता पूरी तरह स्वीकार कर लेता है, जिन्हें चक्रों (plexuses) द्वारा ये गुरु उनके अंदर डाल देते हैं।

पहले मामले में साधक को आराम मिलता है, और उसका मस्तिष्क शून्य हो जाता है। कुछ वर्षों के अभ्यास से उसे अपनी दुर्बलता का पता चलता है कि वह सच्चाई का सामना नहीं कर सकता है और वह बड़ी मात्रा में नषीली वस्तुओं का सेवन करने लगता है। दूसरे मामले में इच्छुक साधक गुरु का पूरी तरह से गुलाम बन जाता है और अपने सब धन-दौलत बिना तर्क के अपने गुरु के हवाले कर देता है। ये अगुरु लोग कभी भी अपने काम की तकनीक नहीं बताते हैं और न ही अपनी शक्ति दूसरों को देते हैं। सब प्रकार की कोशिशें जो धर्म के नाम पर की जाती हैं या कुण्डलिनी के गलत इस्तेमाल करने से उनमे केवल अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र को क्रियाशील किया जा सकता है पर उससे परानुकंपी तंत्रिका-तंत्र (सुषुम्ना) पर कोई प्रभाव नहीं होता।

सब प्रकार की सम्मोहन शक्तियाँ जैसे-हवा से कोई वस्तु पैदा करने की शक्ति (materialisation power) जिससे सत्ता और ख्याति पैसा हड़पने के लिए जनसामान्य को वश में किया जाता है, दृष्टि सिद्धि वाणी सिद्धि रोग-निवारक शक्ति, भावातीत अनुभूति; (transcendental feeling) या मन को शून्य करने की शक्ति, शरीर से अलग होना (out of body experience) आकाश में तैरना और अन्य कई शक्तियाँ हैं, जो उन लोगों में पाई जाती हैं, जो प्रेत-सिद्धि या श्मशान-विद्या के जरिए मृतात्माओं (प्रतों) को अपने वश में करने का काम करते हैं। इन सभी शक्तियों (जो मृतात्माओं की शक्तियाँ हैं) की परख, सहजयोग के किसी प्रायोगिक केन्द्र में कर सकते हैं (और इनसे साधक को मुक्त कर सकते हैं)।

ये दिव्य शक्तियाँ नहीं हैं क्योंकि एसे स्थूल विषयों में दिव्य (divine) की कोई रुचि नहीं होती है। उसकी रुचि केवल मुनष्य के आत्मिक चमत्कार में तथा मनुष्य के विकास के लिए उसकी अभिव्यक्ति में होती है। जो लोग अपनी धुन में रहते हैं और अपने चित्त को सिद्धियों में लगा देते हैं तथा जो बाहरी चमत्कारों के पीछे दौड़ते हैं, वे आसानी से (प्रेतात्माओं के) वशीभूत हो जाते हैं।

अचेतन मन की शक्तियाँ (psychic powers) व्यक्तित्व परिवर्तन की विश्वसनीय तकनीक नहीं है। जो इंसान इन शक्तियों का प्रदर्शन करता है, वह वास्तव में अपने अहंकार को पार करने में असमर्थ होता है। वास्तव में, उसके शिष्यगण उस शक्ति के रहस्य को जानने का प्रयास करते हैं और न कि सच्चाई को। ऐसे साधक गुमराह हैं या अवसरवादी हैं। उनके मन में केवल अपने शुद्ध स्वार्थ की साधना, कौतूहल, आकांक्षा या लोभ-लालच होते हैं।

मायावी, छल या धोखेबाज नीम-हकीम किस्म के लोगों ने पश्चिमी देशों में पारंपरिक या आध्यात्मिक ढाँचे की कमजोरी से उत्पन्न स्थिति का बड़ा फायदा उठाया है। जो गुरु, डरा-धमका कर या उन्हें उनकी अपराध-भावनाओं का दोषी ठहरा कर, एक समूह के लोगों पर अपना नियंत्रण कर लेता है, उस पर स्पष्ट रूप से संदेह होने लगता है। इसके विपरीत जो गुरु अनुयाईयों के अहं को बढ़ावा देता है या उनसे खिलवाड़ करता है वह और भी अधिक खतरनाक होता है। मनुष्य की साधना में, घमंड (अहंकार) उतनी ही बड़ी बाधा है जितनी कि दोष-भावना (guilty conscious)। जिस दल (समूह) के लोग अपने नेता (धार्मिक-गुरु) के रंग का कपड़ा पहनते हैं, वे उसकी (गुरु की) भावना को प्रदर्शित करते हैं। एक चालाक (ढोंगी) गुरु अपने शिष्य के सब प्रभावों को नष्ट करके और उसे अधिक सोचने पर मजबूर करके, उसकी बुद्धि को धोखा दे सकता है। एक सच्चा गुरु साधक को

हमेशा अपने भीतर देखने की याद दिलाता है, ताकि उसे सद्गुरु मिल सके। वह शिष्य को अपने आपसे मुक्त करने को कोशिश करता है और उससे आत्मनिर्भर बनने की आकांक्षा करता है।

अंधेरे में छलांग लगाने से पहले साधक अपने गुरु के कुछ पहलुओं (aspects) की जांच कर सकता है। शुरु में उसे पता लगाना चाहिए कि, गुरु जिस बात की शिक्षा देता है, उसका पालन करता है या नहीं। उसमें दोहरा मानक (double standard) नहीं होना चाहिए। यदि वह कड़ाई से संयम बरतने की शिक्षा देता है तो स्विस बैंक में उसके पैसे का हिसाब-किताब क्यों होना चाहिए? साधक को अपने आपसे प्रश्न करना चाहिए कि, 'उसका (गुरु) कौन सा गुण मुझे आकर्षित करता है? क्या यह चमत्कार, सेक्स व्योहार, वाक्यपटुता या सफलता है? क्या वह माँ-बाप का प्यार दे सकता है या पति या पत्नी की कमी की पूर्ति कर सकता है? क्या मेरी इच्छा उसके इस समूह में शामिल होने की है? या मेरी अपनी असुरक्षा के लिए यह एक रक्षा कवच है? जिसमें में अपने आपको छिपा सकता हूँ। क्या यह अपने आपसे भागने की मेरी धुन है? मेरा इरादा क्या है?' यदि इरादा दोषपूर्ण (धूमिल) है तो शुद्ध-इच्छा के बिना साधक (व्यक्ति) आसानी से आत्म-प्रवंचना के जाल में फँस सकता है।

सत्य को पाने के लिए साधना, शुद्ध (पवित्र) या बिना किसी समझौते के होनी चाहिए। तब अबोधिता (बुद्धिमत्ता) की शक्ति क्रियाशील होती है और उसके फैसले की रक्षा करती है। फिर भी साफ-सुथरे इरादे (अभिप्राय), तब तक धोखा खाने से नहीं बचते, जब तक समझ-बूझ और बुद्धि का इस्तेमाल न किया जाय। सहजयोगियों ने पाया कि बहुत से (सच्चे) साधकगण झूठे गुरुओं के चंगुल में फँसे हुए हैं और ऐसी स्थिति में वे गुरु को छोड़ भी नहीं सकते, क्योंकि वे गुरु उन्हें असामान्य रूप से गुलाम या

अंधभक्त बना देते हैं। ऐसे क्षण में यही उचित है, कि साधक अपने आपसे प्रश्न करे कि वास्तव में उसने क्या हासिल किया है? शिष्यत्व की कौन सी शक्ति उसमें काम कर रही है, या प्रकट हुई है?

यह देखा गया है कि प्रेताविष्ट (possessed) लोग, जब सहजयोग का सामना करते हैं तो वे काँपने लगते हैं और पागलों की तरह झूमने लगते हैं। यदि बड़े परिश्रम से ऐसा व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करता है, तो ऐसी शक्तियों और उनके प्रदर्शन से उसका विश्वास पूरी तरह से हट जाता है। वास्तव में वह उन अप्रिय मृतात्माओं से मुक्त हो जाता है, जो उस पर हावी रहती थीं। अचेतना (unconscious) में पहुँचने के लिए, अवचेतना की परत (strata) से होकर गुजरने की कोई आवश्यकता नहीं है। अवचेतन अपने आपमें एक अंत है और जो व्यक्ति उसमें प्रवेश करता है, वह वहाँ खो जाता है। सीधा रास्ता केवल परानुकंपी (सुषुम्ना) से होकर जाता है, जो आध्यात्मिक उत्थान का मध्यम मार्ग है।

परामनोविज्ञान में ऊपरी तौर से दिलचस्पी लेना अथवा अवचेतन की शक्तियों (powers of the dead) का इस्तेमाल करना खतरनाक है, क्योंकि वे साधक के नियंत्रण के बाहर चली जाती हैं और उसे घोर यातनाएँ देती हैं। जिनको इन शक्तियों से अस्थाई लाभ होता है, बाद में उन्हें इतनी बड़ी हानि देती हैं, कि उनकी पूर्ति कभी भी नहीं हो सकती है। ऐसी हानि शारीरिक, मानसिक और भगवत्कृपा से वंचित होना आदि है।

मतिभ्रम (hallucinations) और कल्पना की उड़ानें, दोनों मनुष्य के भवसागर में खलबली मच जाने से होती हैं। भवसागर में जो बाधा बनती है, उससे एक भ्रम का परदा पड़ जाता है, जो सत्य को ढँक लेता है। जब तक आत्मसाक्षात्कारी गुरु द्वारा भवसागर की सफाई नहीं होती, तब तक साधक

भ्रम के समुद्र में ही डूबा रहता है। भवसागर (void) हमारे 'गुरु-सिद्धांत' का परिचायक है। जब यह जाग जाता है तब हम गुरु बन जाते हैं, अर्थात् हम दैवी शक्ति (divine power) से 'गुरुत्व' का अधिकार प्राप्त करते हैं, जिसमें वह प्रकट होती है और हम दूसरों की कुण्डलिनी जागृत कर सकते हैं।

जो साधक अभी तक किसी ढोंगी गुरु के पास नहीं गए हैं, उन्हें बहुत जल्दी आत्मसाक्षात्कार (self realisation) मिलता है और वे इसे बड़ी सरलता से संभाल कर रख सकते हैं। जो लोग धार्मिक जीवन बिताते हैं, उनका भवसागर साफ रहता है। व्यक्ति का साक्षात्कार स्थिर होने के बाद, धर्म जागृत हो जाता है, तब उसके बाद उसे 'क्या करना है' और 'क्या नहीं करना है', के विषय में जानने की आवश्यकता नहीं होती है (क्योंकि धर्म ही उसका कार्य करता है जो सर्वदा और सर्वथा उचित होता है)। धीरे-धीरे, सभी बुरी आदतें एक-एक करके अपने आप छूट जाती हैं।

अनहत / हृदय चक्र

चित्र संख्या - 8

10
अनहद-नाद (हृदय चक्र)

भले ही उससे मित्रता करने में कोई दिलचस्पी न हो,
फिर भी अपनी आत्मा को डूबने से बचा लो।

-खलील गिब्रान

जब शिशु का जन्म होता है, तब सबसे पहले वह अपनी माँ की आत्मा को महसूस करता है। जन्म के समय वह अपने आप तथा अपनी माँ के बारे में कुछ नहीं जानता, परन्तु माँ की आत्मा का उसे आभास होता है। जब वह माँ के गर्भ से बाहर आता है, तब उसे एक धक्का लगता है। उसकी पहली प्रतिक्रिया माँ के गर्भ में वापस जाने की होती है। फिर भी, उसकी आत्मा अपनी माँ की आत्मा में आराम पाती है और उस सांत्वना से शिशु उस पर्यावरण में भी सुरक्षित महसूस करता है जिसका वह आदी नहीं होता है। इस हालत में उसके मन, अहंकार और संस्कार के पहलुओं का विकास नहीं होता है। वह एक शुद्ध आत्मा होता है जो अपनी माँ की आत्मा को अहसास करता है। उसका यह अहसास सच्चा और किसी चाहत के बिना शुद्ध प्रेम है। यह कोई संस्कार नहीं है। यह केवल दो आत्माओं की आत्मीयता का आनंद है।

मूलत: सच्चा प्रेम, एक गुण है, जो आत्मा से उत्पन्न होता है न कि इंद्रियों या मन से। इसलिए जब कोई किसी से प्रेम की बात करता है, तब यह जानना उचित है कि, उसका प्रेम शरीर से है या आत्मा से। शरीर का आकर्षण भौतिक या स्थूल होता है। वह सेक्स की भावना, आकर्षक राजकुमार के स्वप्न, मनुष्य की कुशलता या बुद्धि की प्रशंसा, कलाकार का कला-प्रदर्शन या सिर्फ ओछी भावना से आ सकती है। शारीरिक आकर्षण सच्चा प्रेम नहीं

है, क्योंकि वह मन से उत्पन्न होता है। मन प्रेम नहीं करता है, वह केवल इच्छा करता है। अक्सर संस्कारों के कारण सच्चे प्रेम की भावना को भ्रम से स्वामित्व, सेक्स और व्यक्तिगत स्वार्थ समझ लिया जाता है, तथा प्रेम की वस्तु, इच्छा की वस्तु बन जाती है, जबकि शुद्ध प्रेम निर्लिप्त होता है।

जब मन की इच्छा पूरी हो जाती है तब उसकी नवीनता मिट जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालक उत्सुक होकर नये खिलौने से घुल-मिल जाता है, और कुछ दिनों बाद जब उसका नयापन समाप्त हो जाता है तब उसकी उत्सुकता नहीं रह जाती है। उसी प्रकार की घटना मनुष्यों के रिश्तों में घटती है, जो केवल शारीरिक आकर्षण पर निर्भर होती है। आकर्षण, मनुष्य के संस्कार (या आदतों) से उत्पन्न होता है, या किसी का किसी पर प्रभाव डालने से, या किसी के छल करने के इरादे से भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसे भी लोग हैं जो फुसला कर अपने शिकार को, जाल में फँसाते हैं। वे लोग जो खास-कर तड़क-भड़क, नये फैशन में पड़ जाते हैं, खतरनाक धरातल पर चलते हैं। वे, जो आत्मा की आँखों से नहीं देखते हैं, मन की उँची तरंगो पर सैर करते हैं। मानसिक प्रेक्षण केवल भ्रम है, जो न तो प्रेम करते हैं और न ही प्रेम के लायक होते हैं। यह आँखों का एक धोखा (भ्रम) है, जिसे शेक्सपियर तत्परता से कहते हैं -

मुझे बताओ भ्रम कहाँ पैदा होता है
हृदय में या मन में, कैसे जन्म लेता है।
कैसे पैदा, पनपता है जवाब दो, जवाब दो।
आँखों में चमकता है वह।
एकटक देखने से वह भ्रम
उसी पालने में विलीन हो जाता
जहाँ वह सुषुप्त रहता है।'

व्यक्ति जो कुछ दूसरों में देखता है, वह केवल उसकी अपनी ही परछाईं है। पर जब वह आत्मवत् हो जाता है, तब वह अपना संबंध मनुष्य की आत्मा से रखता है (और उसी से बात करता है)। ऐसे वार्तालाप में बड़ी गहराई होती है, जो मनुष्य को पूर्ण संतोष और अमर-प्रेम का आनंद देती है। मनुष्य के शरीर में, 'आत्मा की पहचान' करने का ज्ञान, अनेक प्राचीन संस्कृतियों के रीति-रिवाजों में दबा पड़ा है। उनकी परंपराएँ, आत्मा का सम्मान करने और उसकी शान (protocol) का आदर करने के लिए विकसित हुई हैं। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष में दूल्हा (groom) जब दुल्हन के घर में प्रवेश करता है, तब उसकी आत्मा के सम्मान में वह देहली पर उसकी पूजा करती है। इस प्रकार विवाह एक आत्मीय मिलाप है, क्योंकि आत्मा को जाने बिना, विवाह केवल एक सामाजिक रीति या ठेका बन कर रह जाता है। परन्तु पश्चिमी देशों में जहाँ ऐसी परंपरा का अभाव है वहाँ विवाह 'जोड़ने' या 'तोड़ने' का एक बदलता हुआ रिश्ता मात्र रह जाता है। इस प्रकार का क्षणिक संबंध मनुष्य के हृदय-चक्र पर बुरी तरह से असर डालता है, जिससे उसमें असुरक्षा की भावना आ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में, विश्वास के बदले पति-पत्नी के बीच, भय की लहर उभर कर आती है। ऐसे समाज में असुरक्षा की समस्या, धन की कमी से नहीं, बल्कि भावनात्मक शून्यता (emotional vacuum) से आती है।

विवाह का अर्थ - हे स्वामी, हमें समझाओ।
वह बोला, हमेशा साथ रहो एक दूजे के हो जाओ।।
साथ-साथ जन्म लिये (शादी में) साथ-साथ जियोगे।
*Merchant of Venice, Act III (ii)
जीवन के दिन बीतें, मौत आये तब साथ मरोगे।।
यही नहीं, साथ रहोगे, प्रभु की शांत स्मृति में।

तुम्हारी संगति में जगह बने, जहाँ चले हवा स्वर्ग की,
तुम दोनों के बीच में।।

'दी प्राफेट'-खलील गिब्रान

केवल अनहद-चक्र (heart chakra) द्वारा ही परमानंद, तथा पवित्र-प्रेम के आनंद की अनुभूति होती है। जहाँ पर एक साथी दूसरे पर अपना अधिकार जमाता है या उसको अपने वश में रखने की चेष्टा करता है, वहाँ आपसी संबंधों में दरार पड़ जाती है। परन्तु आत्मीय प्रेम की लहरों में प्रवाह की स्वतंत्रता होती है। दोनों में से प्रत्येक को एक दूसरे की इज्जत करनी चाहिए और अपने दबाव डालने वाले व्यक्तित्व के बल से दूसरे के विकास पर रोक नहीं लगानी चाहिए। आधुनिक शिक्षा तथा मानव-अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार देते हैं। स्त्री अपने आपको समान अधिकार वाली सहयोगिनी समझ कर प्रभुत्व (domination) का विरोध करती है। पुरुष अपने शारीरिक बल के कारण घर को बचाता है या उसकी रक्षा करता है तथा बाहर कमाने के लिए काम पर जाता है। धन उसे बल प्रदान करता है, जिसके कारण वह (पुरुष)अपने आपको स्त्री से श्रेष्ठ मानता है। ऐसी परिस्थिति में स्त्री अपना अधिकार जताने में असमर्थ हो जाती है और अपना क्रोध दबाने की उसकी आदत हो जाती है। यह क्रोध अक्सर बच्चों पर उतारती है। उस समय में वह चिड़चिडेप़न और कमजोरी की हालत में, स्नायु की बीमारी से पीड़ित हो जाती है। स्तन का कैंसर, तथा दूसरे किस्म के स्त्री-रोग, प्रत्यक्ष रूप से देखे जा सकते हैं, जो स्त्रियों पर दबाव डालने या उनके साथ अनुचित व्यवहार करने से होते हैं। (चित्र संख्या-8 देखें)

विकास (evolution) की चौथी सीढ़ी पर भगवान् राम ने स्त्री-पुरुष के आदर्श आचरण का मार्गदर्शन करने के लिए इस धरती पर अवतार लिया। उन्होंने 'कैसे राज्य करना चाहिए' और आदर्श समाज की स्थापना के लिए

आवश्यक सामाजिक मूल्यों का आदर्श, मनुष्यों के सामने रखा। उन्होंने शासन चलाने के लिए जनता की भलाई के सिद्धांतों की व्याख्या की तथा धर्म के अनुसार सामाजिक और राजनैतिक नीतियों का निर्धारण किया। ये नीतियाँ आध्यात्मिक विकास के नियमों के अनुरूप थीं। अपने त्याग तथा जीवन में सत्य के आदर्श से उन्होंने कल्याणकारी तथा सम्मानजनक सीमा-रेखा खींची, जिसके दायरे में मानव का जीवन बीते और उसकी व्यवस्था की जा सके। इन परिभाषाओं से हमें अध्यात्म की खोज, आत्मज्ञान तथा हृदय की प्रतिष्ठा की रक्षा करने का मार्गदर्शन मिलता है। मनुष्य-जाति को इस महान स्रोत (हृदय) तथा भीतरी संवेदना की रक्षा करने के लिए बुद्धि (intelligence) दी गई थी। परंतु दुर्भाग्यवश हमारे आज के समाज में बुद्धि का प्रयोग आत्मा का तिरस्कार करके किया जाता है।

भगवान् श्री रामचन्द्र ने कर्तव्य के सिद्धांतों पर जोर दिया, जैसे बालकों का माता-पिता के प्रति, माँ-बाप का बालकों के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, या उनका एक दूसरे के प्रति क्या कर्तव्य होने चाहिए। उनके राज्य में प्रौढ़ता बुद्धिमत्ता का प्रतीक मानी जाती थी तथा मार्गदर्शन के लिए बुजुर्गों से सलाह ली जाती थी। समाज के संगठन तथा उसकी रक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक है। यदि परिवार टूटता है तो समाज के भी टुकड़े हो जाते हैं। घरेलू स्तर से समूचे देश की रक्षा तक पूरे समाज की व्यवस्था करना आवश्यक है। समाज मनुष्य को सामाजिक सुरक्षा देता है। यदि समाज के वृद्धजनों को मालूम हो कि उन्हें वृद्ध लोगों के आश्रम में रहना पड़ेगा तो वे हमेशा असुरक्षित रहेंगे। पैसे से भावनात्मक सुरक्षा नहीं खरीदी जा सकती। वृद्धावस्था एक प्रकार की बाल्यावस्था है, जिसमें प्रेम और देखभाल का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसके अलावा बुजुर्गों का आशीर्वाद बड़ा ही संतोष और सुख देने वाला होता है। अत्यधिक व्यक्तिवादिता (अपने आपको

विशेष समझना) का परिणाम अकेलापन है (ऐसे व्यक्ति के पास कोई नहीं फटकता है)। प्रेम का अर्थ केवल स्त्री-पुरुष तक सीमित रह गया है, ऐसा समझना उचित नहीं। प्रेम, वृक्ष के उस जीवन-रस (sap) के समान है, जो बच्चों के बीच, माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, वृद्धजन आदि सभी शाखाओं में प्रवाहित होता है; जहाँ लोग आत्मीयता (हृदय) से काम करते हैं, वहाँ आनंद की सीमा नहीं रहती। जहाँ बहुत से लोग, एक दूसरे की सुरक्षा के भागीदार होते हैं और आपस की देखभाल करते हैं, वहाँ संपूर्ण समाज का अनाहत (हृदय) चक्र खुल जाता है, और वह एक नये विश्व में कदम रखता है। प्रेम की शक्ति वास्तव में कार्य करती है। सृष्टि स्वयं उसका उदाहरण है कि परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति कैसे कार्य करती है।

प्रेम से आत्मविश्वास पैदा होता है और आत्मविश्वास से स्वाभाविक रूप से व्यक्ति की सुरक्षा-व्यवस्था मज़बूत होती है, जिससे बाहर की अनिष्टकारी शक्तियों से रक्षा होती है। भय से हमारे भीतर विद्यमान, रोगों से मुक्त रहने की प्राकृतिक शक्ति, कमजोर हो जाती है और हम आसानी से एलर्जी तथा अन्य रोगों के लिए संवेदनशील हो जाते हैं। जब हृदय-चक्र शक्तिशाली होता है, तब मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होता है और उसमें निखार आता है। ऐसा व्यक्ति जीवन-संग्राम में विजयी होता है। इसके विपरीत, मनुष्य का व्यक्तित्व सूख कर कांटा हो जाता है, जब वह भय के गहरे तथा अंत न होने वाली सुरंग में गिर जाता है। तब बहुत सी शारीरिक बीमारियाँ, जैसे हृदय की धड़कन का बढ़ना, सीने में उत्पन्न होने वाली समस्यायें असुरक्षा की भावना से पैदा होती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार असुरक्षा से अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, परन्तु यह समझ लेना चाहिए कि असुरक्षा का मूल कारण, मनुष्य का अहंकार है।

कहा जाता है, कि जिसका हम बहिष्कार करते हैं, उसी की ओर

आकर्षित होते हैं। यदि हमारे हृदय-चक्र में बाधा है, तो हम तदनुरूपी साथी की ओर आकर्षित होते हैं और इस प्रकार समस्या को बरकरार रखते हैं। इसलिए किसी-साथी का चुनाव करने के पहले हमारे लिए सशक्त और स्थायी होना महत्वपूर्ण है। जहाँ बचपन में माँ का प्यार नहीं मिलता वहाँ उसी प्रकार के दूसरे रिश्तों से इसकी कमी पूरी हो जाती है। जब हम हृदय से व्यवहार करते हैं, तब हम दूसरों के दोषों पर ध्यान नहीं देते। हम दूसरे की खामियों की अनदेखी कर उसके भागीदार बन सकते हैं और आसानी से दे भी सकते हैं। एक माँ के लिए, अपने बच्चे को सर्वस्व दे देना बोझसम नहीं है, बल्कि सहज है। यह उसके प्रेम का आमंत्रण है। प्रेम परिवार की जीवनदायिनी शक्ति है। वह उसे मजबूत करता है, पुष्ट करता है और संभाल कर रखता है।

एक सशक्त हृदय-चक्र स्वस्थ व्यक्तित्व का आधार है। प्रेम से पोषण पाकर वह उष्णता और सुख प्रदान करता है। प्रेम प्रकृति का मार्ग है। प्रेम से ही बीज, मिट्टी से पोषण प्राप्त करता है और उगता है। एक डॉक्टर की आत्मीयता (उष्णता) और प्रेम उसके इलाज की आरोग्य क्षमता में योगदान देती है। आत्मीय और प्रिय व्यक्ति होना ही मर्ज़ का इलाज है। ऐसे व्यक्तित्व की चैतन्य लहरें (vibrations) दूसरे व्यक्तियों को उसी प्रकार आकर्षित करती हैं, जैसे मधुमक्खी फूलों में स्थित मधु की ओर आकर्षित होती हैं। प्रेम ही करुणा का रूप धारण करता है, जिससे हम पिघल जाते हैं और बिना सोचे-विचारे मानवता की सहायता के लिए निकल पड़ते हैं। तब वह नैतिक-विवशता या मानसिक निर्णय नहीं अपितु एक सहज (spontaneous) कार्य होता है। हृदय दूसरों के दुखों को देख कर पसीज जाता है, क्योंकि वह दूसरों की ही परछाई है। श्री माताजी अक्सर पूछती हैं 'दूसरा व्यक्ति है ही कौन? जब मन की सीमित क्षमता, परमेश्वर को जानने के लिए असीम हो जाती है?

यदि आप सूर्य और उसका प्रकाश हैं, यदि आप चन्द्रमा और उसका प्रकाश हैं, तब एक से दो (द्वैत) का भेद कहाँ है? केवल जहाँ अलगाव (फर्क) है, वहाँ द्वैत है उसी अलगाव के कारण आप लगाव (attachment) महसूस करते हैं, 'आप' और 'आपके' के बीच की दूरी ……, और इसलिए आप उससे चिपक जाते हैं। हर चीज़ हम ही हैं, दूसरा कौन है? जब मन अपने अस्तित्व को भूल जाता है, तब वह सीमित मन असीम आत्मा में बदल जाता है।' श्री माताजी के दैनिक जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं घटती हैं जिसमें दूसरों की पीड़ा, उनके शरीर में महसूस होती हैं। उनका शरीर इतना करुणामय है कि, वह दूसरों के दुखों को अपने में खींच लेता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि जब बीमार व्यक्ति उनके समक्ष जाता है, तब उसे बड़ा आराम महसूस होता है, जबकि उनका शरीर पीड़ा से ऐंठता है। वे बड़ी सरलता से हँस कर कहती हैं- 'ओह! यह तो कुछ भी नहीं, केवल मेरा शरीर है।' और बीमार व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

श्री माताजी का अनुभव है कि प्रेमविहीन संसार पाषाण-युग में है, क्योंकि लोग असुरक्षित हो रहे हैं और उनके दिल पत्थर जैसे हैं। योजना बनाना (मन, बुद्धि का काम) एक-तरफा हो जाता है, जब उसमें हृदय को शामिल नहीं किया जाता है। उसका फल रूखा-सूखा और प्रेम-रहित होता है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि, अनेक पीढ़ियों की उन्नति और उपलब्धियों के बावजूद भी, लोग आनंद से वंचित और उदासीन हैं। उत्पादन के तरीके तथा व्यापार के तकनीक विनाश की ओर ले जा रहे हैं। यह दबाव, सभी सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में पड़ रहा है। सफलता और आक्रामकता मानवीय-मूल्यों पर हावी हो गए हैं। विद्यालय कारखानों के समान हो गए हैं, जहाँ विद्यार्थियों को उत्पादकता की नई नीति-निर्धारण के लिए पहले से तैयार किया जाता है। वे, आने वाले कल की आवाज बुलन्द करने वाले

बच्चे, कार्यकारी अफसर, व्यापारी, विक्रेता आदि होने वाले हैं। उनमें दूसरों के पैर खींच कर दौड़ में आगे बढ़ने तथा विजयी होने की धुन सवार है। यह जीतने वालों की दुनियाँ है। परन्तु यह एक बड़ा व्यंग्य है कि अंत में कोई विजयी (सफल) नहीं होता। इस ऊहापोह की दौड़ में हर कोई एक दूसरे को नष्ट कर देता है। तथाकथित सफल जाने-माने जापान के उद्योगपति अल्पायु में ही हृदय गति के रुक जाने से मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। अत्यधिक सक्रियता और लगातार की दौड़-धूप की जीवन-प्रणाली के परिणामस्वरूप उनमें अनेक शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक असंतुलन तथा दुर्बलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। चाहे वह दुनिया का कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, प्रेम के बिना वह दीप्तिहीन स्वर्ण, सुगंधहीन फुलों के समान है।

दाहिनी ओर की अत्यधिक सक्रियता (over-activity) मनुष्य के ध्यान को मानसिक-स्तर पर केन्द्रित कर देती है। कुछ समय पश्चात् उसका चित्त मानसिक धरातल पर सक्रिय रहने का आदी हो जाता है और हृदय से उठने वाली आनंद की लहरों को स्पर्श करने की क्षमता खो देता है। प्राय: चित्त को उस दिशा में सक्रिय करने के लिए किसी सहारे की आवश्यकता होती है। परन्तु जब चित्त का इस्तेमाल किया जाता है, तब वह बाईं ओर के अंतिम छोर तक, झूल कर (by swinging) चला जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि वह मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) के संतुलन बिन्दु के प्रभाव से तेजी से बाहर निकल जाता है। दोलक (pendulum) के सदृश इस प्रकार की गति से दोहरे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। आधुनिक समय (कलियुग) में बहुत से लोग इस प्रकार के चरम और विरोधाभास की व्यावहारिकता से ग्रस्त हैं।

मध्यनाड़ी (central channel) की ओर गतिशील होने से व्यक्ति सभी प्रकार के आवेगों से छुटकारा पा लेता है, और इस प्रकार के चरम व्यवहार पर काबू पा लेता है। मानसिक स्तर पर परमात्मा के अस्तित्व पर धारणा

बनाना बड़ा कठिन है। सीधे-सीधे यह स्वीकार कर लेना उचित है, कि 'ईश्वर है', क्योंकि 'परमात्मा' मनुष्य के मानसिक सोच-विचारों की सीमा से परे है (कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ से मनुष्य का मस्तिष्क कुछ समझ नहीं पाता है, वहाँ से परमेश्वर का राज्य शुरु होता है)। मन की एक तरफा-गति से वह मानसिकता के माया जाल में फँस जाता है और स्वयं उत्पन्न की गई समस्याओं के साथ वापस आता है। इन समस्याओं का कोई समाधान नहीं है, क्योंकि उनका आधार सत्यता के धरातल पर नहीं होता। इस प्रकार की समस्या के निदान के लिए मनोविज्ञानी, मन को इधर-उधर घुमाते हैं, परन्तु शीघ्र ही मन दूसरी किस्म की उधेड़-बुन में लग जाता है। परन्तु जब प्रेम की एक किरण (shaft) हृदय में प्रवेश करती है 'तब' वह सभी समस्याओं को हल कर देती है। मानसिक रूप से पीड़ित लोग अपने हृदय के सभी दरवाजे बंद कर चुके होते हैं। परन्तु कुंडलिनी को मालूम है कि उन्हें कैसे खोला जाय। व्यक्ति को उस (कुंडलिनी) पर विश्वास करना चाहिए। वह मनुष्य के चित्त को दाईं बाजू (right side) से खींचकर, मध्यनाड़ी में ले आती है और तब कुंडलिनी मस्तिष्क के तालू भाग (limbic area) में चढ़ जाती है तथा व्यक्ति के मन में निर्विचारिता की स्थिति कायम कर देती है। लगातार, एक के बाद एक, ऐसे अनुभव से दाईं तरफ की पकड़ ढीली हो जाती है और चित्त मध्य में स्थिर हो जाता है। इस अवस्था में परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति, हृदय-चक्र में समा जाती है और उसे प्रकाशित करती है तथा उसमें आह्लाद और परिपूर्णता भर देती है।

इस संतुलन को कायम रखने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है, कि मानवीय मूल्यों को सभी संगठनों, व्यवस्था-नियंत्रण, उत्पादकता तथा प्रणालियों में प्राथमिकता देनी चाहिए। तब इस क्रांति को, हृदय का लाभ मिलेगा, जो न केवल व्यक्ति को संतुलन में रखेगा, बल्कि समाज में भी सृजनात्मकता,

आध्यात्मिक उत्थान और मित्र-भाव का निर्माण करेगा। वास्तव में, यह पूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों के मार्ग को संतुलित रूप से प्रशस्त करेगा, जिससे सामूहिक लाभ होगा। आमूल-परिवर्तन का कार्य बाहर से नहीं, बल्कि मध्यम परिवार से शुरु होता है, जो सबका वास्तविक कारण है। उदाहरण के लिए एक परोपकारी तथा पितृत्व की भावना वाला उद्योगपति न केवल उपयोगी औद्योगिक संबंधों को बढ़ावा देता है, अपितु हृदय-चक्र के दाईं ओर को भी पुष्ट करता है। इस प्रकार अपने में, अपने परिवार में और समस्त औद्योगिक समाज में शांति और संतुष्टि लाता है।

राष्ट्रीय नेतृत्व और सरकारी नीतियों की सूक्ष्मतम स्तर पर भी यह बात सही है। जब नीति-निर्धारण करने वाले, मानवीय-मूल्यों को ध्यान में रखते हैं, तब शांति और प्रगति को ध्यान में रख कर निर्णय किया जाता है। किसी वस्तु की प्रचुर-मात्रा या आवश्यकता से अधिक होना मनुष्य की विशाल उदारता का प्रतीक है। इसकी छत्र-छाया में आर्थिक सूचकांक एक सही दिशा की और बढ़ता है और सहजता से सब प्रकार की बाधाओं और कठिनाइयों को पार कर जाता है। हृदय में, एक सहज लचीलापन और बुद्धिमत्ता होती है, जो बैर-भाव का सामना करती है और उसे दूर करती है। यह (सहजता) प्रेम की शक्ति है। इस शक्ति से शस्त्र-सज्जित व्यक्ति सब प्रकार के आक्रमण और युद्ध की बातों को मिटा सकता है। एक देश की सामूहिक सकारात्मकता (positivity), निस्सन्देह सारे संसार में सहानुभूति की लहर उत्पन्न कर सकती है। परन्तु हृदय, समय की सीमा में नहीं बँधता है और उसका दूसरा पक्ष धैर्य और सहनशीलता है। समय से इसे मापा नहीं जा सकता। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जो सबसे महत्त्वपूर्ण बल है, वह है- परमात्मा के दिव्य प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति, जो सृष्टि का सारा काम करती है।

दौड़-धूप या आपा-धापी के जीवन के बावजूद, धनी व्यक्ति उसका

आनंद लेने में मस्त हैं। यह जानना उचित है कि जब एक व्यक्ति बहुत सारा धन एकत्र कर लेता है, तब शराब पीने और अपने आपको मूर्ख बनाने के सिवाय और क्या करता है। परन्तु, धन कमाना और उसका आनंद लेना तभी संभव है, यदि व्यक्ति अपने में संतुलन की स्थिति लाना सीख लेता है। यह सहजयोग का विषय है कि पदार्थ में आत्मा का समागम कैसे हो सकता है, तथा सामान्य जीवन के हर पहलू में-जैसे, अर्थ, कला, संस्कृति और राजनीति में भी वह समा सकता है। विश्व की रचना, संग्राम छेड़ने या उससे पीठ दिखाकर भागने के लिए नहीं की गई है, अपितु आनन्दोत्सव मनाने, उसे सजाने-सँवारने और आनंद की वृद्धि करने के लिए की गई है। कला की सभी सुन्दर वस्तुएँ दैवी सुन्दरता की प्रतीक हैं। मनुष्य का शरीर स्वयं एक महान कलाकार की सुन्दर कृति है। यह स्वाभाविक है कि उसमें से जो प्रवाहित होता है (या उसके द्वारा जो व्यक्त किया जाता है) वह उस महान कलाकार की महानता और प्रेम का प्रसार करने के काम में पूरक होना चाहिए।

समूची सृष्टि की रचना और सभी प्रकार की गतियों के पार्श्व में प्रेम का सिद्धांत है। परमेश्वर प्रेम है और प्रेम ही परमेश्वर है। सच्चे प्रेम में 'मैं' या 'तुम' का स्थान नहीं है, वहाँ हमें केवल एक दूसरे में समा जाने, तथा मनुष्य की प्रगाढ़ एकता का अनुभव करना है। शारीरिक रूप से किसी का रंग-रूप, आकार, मन या बुद्धि एक दूसरे से अलग हो सकते हैं परन्तु प्रेम में सभी बूंदे मिल कर महासागर बन जाती हैं जहाँ तरंगे, अनेक रूप बनाती तोड़ती, पुनः बनाती और अनेक ताल में ब्रह्मांड के नृत्य में, नृत्य करती है। घृणा और ईर्ष्या से उल्टी धारा बहती है जो ब्रह्मांड की लय के विपरीत होती है। जहाँ प्रेम है, वहाँ उन्नति है, हर्षोल्लास, आनंद और आध्यात्मिक विकास है।

अहंकार को पार करने के लिए हिंसा की आवश्यकता नहीं है। लोग प्रायः इस गलतफहमी में रहते हैं कि यातनाओं से शुद्धीकरण होता है। यह

विश्वास, कि तपस्या करना (अपने आपको कष्ट देना) जरूरी है, जबकि मौजमस्ती करना बुरी बात है। ऐसी समझ, बायें हृदय को सुस्त कर देती है, जो कि आत्मा का स्थान है। अपने आप का परित्याग (आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाना) अपने आपको पीड़ा देना ये दोनों बातें आत्मा की शालीनता (dignity) के विरुद्ध हैं।

कबीरदास कहते हैं - ''जब तक आप अपने भीतर की माला (आत्मा का ध्यान) को नहीं जपते, तब तक बाहर से माला जपने से आपको क्या लाभ होगा ?''

भौतिक स्तर पर हृदय शरीर का पंप है, इसलिए किसी प्रकार के शारीरिक या मानसिक अतिक्रमण से उस पर तनाव पड़ता है। अत्यधिक सक्रियता से जो गर्मी पैदा होती है, वह दाईं ओर से बायें हृदय की ओर जाती है और उससे हृदय की गति रुक जाती है। खेल-प्रदर्शन के लिए शरीर का उपयोग करने से हृदय-चक्र थक जाता है। मैराथन दौड़ जीतने में कौन सी बड़ी बात है? किसी को प्रथम पुरस्कार मिलता है, तो इससे क्या? उसी प्रकार आज का हठयोग है, जो हृदय पर बुरा प्रभाव डालता है। जो कि आत्मा का निवास स्थान है। प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों ने एक व्यायाम का विकास किया था जो मेरुदण्ड की समस्याओं को ठीक करने के लिए किया था। इससे मेरुदण्ड सीधा हो जाता है और शरीर पुनः सीधा हो जाता है। (मेरुदण्ड की समस्या त्रुटिपूर्ण जीवन जीने से पैदा होती है) इससे हठयोग की शिक्षा की शुरुआत हुई, जो उन लोगों के लिए था, जिनका मेरुदण्ड समस्याओं से पीड़ित होता था। एक स्वस्थ आदमी को इसकी आवश्यकता नहीं है। श्री माताजी का कथन है कि यह एक दवा के समान है। दवा का इस्तेमाल रोग के निदान के लिए करो परन्तु सभी दवाओं को एक साथ खा लेना उचित नहीं। परन्तु आज, विशेषकर पश्चिमी देशों में हठयोग को

अध्यात्म का मार्ग समझ कर लोग गुमराह हो गए हैं। लोग घंटों तक कई प्रकार के आसन करते हैं। सिर के बल खड़े होकर क्या हम परमेश्वर की खोज में जा रहे हैं?

बहुत से आकर्षक शब्दों को योग के नाम से ऊपर उछाला जा रहा है। उदाहरण के लिए, 'फर्नीचर योग' जिसमें व्यक्ति कुर्सी पर बैठता है और एक बाजू से दूसरी बाजू की ओर लुढ़कता है। लोगों को खेलने के लिए खिलौना चाहिए और जब कुर्सी के नीचे और अधिक झुक सकते हैं तो उन्हें बड़ी खुशी होती है। एक दूसरा गुरु, पति-पत्नी का योग सिखाता है। पति और पत्नी को किसी ऐसे गुरु की जरूरत है जो यह बता सके कि उन दोनों में प्रेम है कि नहीं। इसलिए विभिन्न शारीरिक मुद्राओं का आविष्कार किया जा रहा है जिससे वे एक दूसरे को अपने समीप महसूस कर सकें, यह 'जोड़ी योग' है। पश्चिम में योग के नाम पर अनेक व्यवसाय चल रहे हैं। लोग सोचते हैं कि सफेद या भगवे वस्त्र पहन कर, शाकाहारी बन कर और योगाभ्यास करके वे परमात्मा तक पहुँच सकते हैं यह उनका भ्रम है। कपड़े के रंग, भोजन के चुनाव और योगासनों की संख्या से परमात्मा की प्राप्ति का कोई संबंध नहीं है। परमेश्वर की अनुभूति तभी होती है, जब मनुष्य में धार्मिक जीवन, सत्कर्म, सद्विचार और सद्कार्य से कुण्डलिनी (ईश्वर की शुद्ध इच्छा-शक्ति) का उत्थान होता है।

कबीरदास कहते हैं- ''यदि निर्वस्त्र होकर ईश्वर को पाया जा सकता है तो जंगली जानवर बहुत पहले उसे पा चुके होते।''

अपने शरीर को यंत्रवत् बनाने से हम यंत्र के समान बन जाते हैं। सूर्यनाड़ी की अत्यधिक सक्रियता जैसे हठयोग, मनुष्य को शुश्क बना देता है। उसके व्यक्तित्व को ठंडा तथा प्रेमहीन बना देता है। (वह अहंकारी हो

जाता है, कि वह योगी है)। इसके सिवाय, व्यक्ति हृदय-रोग से पीड़ित हो सकता है और उस हालात में आत्मा का शरीर को छोड़ कर जाने पर उसकी मृत्यु हो जाती है। (अतः सारा खेल परमात्मा या उसकी परछाई, आत्मा का है। उसके बिना, सब ठप्प हो जाता है)।

विशुद्धि चक्र

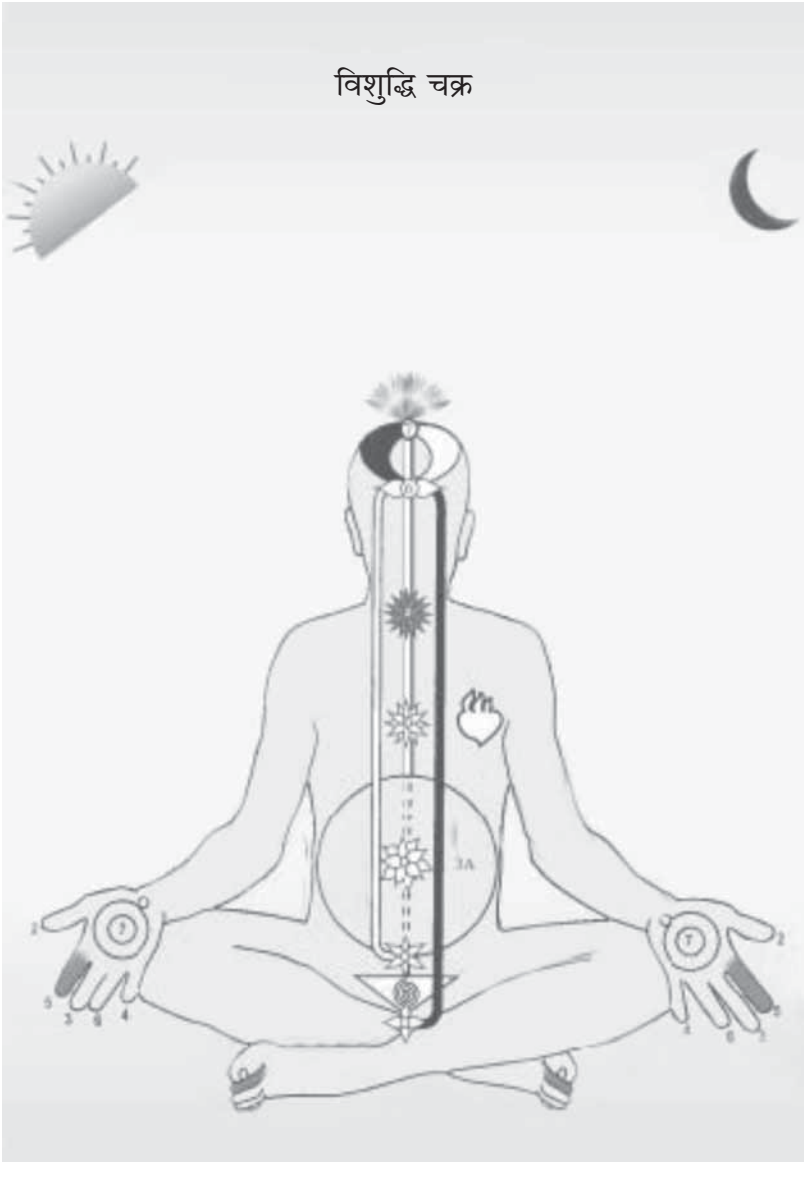

चित्र संख्या - 9

11
सत्य का उपकरण

विकास के पाँचवे चरण पर, आत्मा के आनंद की अभिव्यक्ति करने के लिए, पाँचवें केन्द्र (चक्र) का निर्माण किया गया। इस चक्र पर ईश्वरीय महिमा में, संगीत और काव्य की रचना की गई। धीरे-धीरे जब, मनुष्य के अहं का विकास होता गया तब उस चक्र में मानवीय चेतना का समावेश होता गया, इससे दिव्य-चेतना के प्रवाह में बाधा पड़ने लगी। फलस्वरूप, दिव्य की बाँसुरी बनने के बदले, यह चक्र मनुष्य के अहं का उपकरण बन गया। मनुष्य की अहंकार-रूपी बाधा के कारण, इस चक्र की वह स्वभाविक संवेदना समाप्त हो गई, जिससे वह आत्मा के प्रकंपनों का अनुभव तथा झूठ और सच के बीच में भेद करता है। फिर भी, परम सत्य की पहचान करने की इसकी क्षमता को आत्मसाक्षात्कार द्वारा फिर से, कायम किया जा सकता है।

मनमाने ढंग से मंत्रों के उच्चारण करने से या झूठे गुरुओं द्वारा दिए गए मंत्रों का प्रयोग करने से, शरीर के ध्वनि-यंत्र के प्रकंपनों को नुकसान पहुँचता है। मन पर मंत्रों का प्रभाव पड़ता है। जैसे लोरी गाने से बच्चों की इंद्रियों को शांत करके उन्हें सुलाया जाता है, उसी प्रकार एक लय या स्वर में उच्चारण या गायन करने से इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, इससे मनुष्य के चित्त को तनाव से मुक्ति मिलती है तथा व्यक्ति को विश्राम मिलता है। तनावपूर्ण संसार में इसीलिए मंत्रों की बिक्री एक सफल व्यवसाय बन गया है। मंत्रों से स्वयं को सम्मोहित किया जा सकता है, जो कि सामान्य चेतना के विरुद्ध है। समस्या की पूर्ण जानकारी से ही उसका समाधान हो सकता है, न कि अफीम के समान मंत्रों का सेवन करने से। बच्चे को जिग-सा (Jig-saw) की पहेली बहुत

कठिन लगती है, परन्तु जब वह उसे एक बार, एक साथ मिलाने में सफल हो जाता है, तब उसके लिए वह सरल हो जाती है।

सृजनात्मक बल ने मानवता को उपलब्धियों की नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया है। जैसे ही मनुष्य ने अपनी उपलब्धियों को गौर से देखा, तो उसने यह मान लिया कि वही करने वाला अर्थात् कर्ता है और इस प्रकार वह घमंडी (egoist) बन गया। फलस्वरूप, उसमें सर्वश्रेष्ठता की अनुभूति, उत्पन्न हुई, जिससे उसके जीवन में अनेक प्रकार की गुत्थियाँ और कठिनाइयाँ आ गईं। परन्तु जब हम अपने वास्तविक तादात्मय का अनुभव करते हैं कि हम वास्तव में आत्मा हैं, तब सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। जो भी हो, हमें अपने आपको आत्मा समझ कर, स्वयं का आदर करना चाहिए। माँ कुंडलिनी के लिए, हमारा आत्मसम्मान सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि माँ की महानता का सम्मान किए बिना हम उस हिरण्यवर्णा देवी माँ को प्रसन्न नहीं कर सकते। (कहने का तात्पर्य यह है कि हम स्वयं कुंडलिनी माँ द्वारा बनाए गए हैं, अर्थात् हम उसकी कृति हैं। यदि हम स्वयं अपना सम्मान नहीं करते हैं तो, हम उनकी सुंदर कृति का सम्मान नहीं कर रहे हैं, और यह उनका अपमान ही है। यदि ऐसा करें तो क्या हम उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं? कदापि नहीं) । (चित्र संख्या-९ देखें)

यह (विशुद्धि) चक्र शरीर की पहली छननी है। यह बड़ा संवेदनशील केन्द्र है। यह बाहर से हम पर हमला करने वाली बीमारी के कीटाणुओं से हमारी रक्षा करता है। किसी भी प्रकार के प्रदूषण, औद्योगिक या धूम्रपान से यह चक्र अवरुद्ध हो जाता है।

आत्म-संशय और दोश-भावना दोनों से इस चक्र के सामान्य कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है। कोई व्यक्ति जो दूसरों का ख्याल जरूरत से ज्यादा

रखते हैं, वह उनके व्यवहारों के लिए अपने आपको जिम्मेदार ठहराते हैं। यदि उनका व्यवहार समय के मुताबिक ठीक नहीं रहता है तो वह इसके लिए बहुत लज्जित महसूस करते हैं, उनमें एक प्रकार की दोष-भावना आ जाती है। एक महत्त्वाकांक्षी पत्नी, उसका पति हर बार जब भरी पब्लिक में असफल हो जाता है, तो अपने आपको, इसके लिए कसूरवार समझती है, जैसे कि उसकी खुद की गलती हो। जब हम सिर्फ साक्षी-स्वरूप होते हैं, तभी हम वस्तुस्थिति को सही रूप में देख सकते हैं। जब हम उसमें खो जाते हैं, और हमारी उत्सुकता हमारे ध्यान को (सच्चाई से) हटा देती है, तब हम उचित हल ढूढ़ने के बजाय समस्या को और बढ़ा देते हैं। जब हमारे भीतर अनेक दोष भर जाते हैं, तो हमारे अंदर दबा हुआ रोष पैदा होता है जो (विशुद्धि) चक्र पर अधिक दबाव डालता है। परिणामस्वरूप यह ढेर सारा रोष या गुस्सा हमारे अंदर नकारात्मकता का द्वार खोल देता है, इस चक्र पर पड़ने वाला भारी दबाव, नीचे के दूसरे चक्रों पर भी दबाव डालता है। श्री माताजी का कथन है कि -'' इस चक्र का बायाँ बाजू अवरुद्ध हो जाता है, जब व्यक्ति में अपराध भावना बैठ जाती है। अपनी दोष-भावना के कारण आप अप्रिय और रुखी बातें करते हैं। इस पर काबू पाने के लिए आपको मीठे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। आपकी भाषा सबके लिए मीठी और प्रिय होनी चाहिए, खासकर पति (पत्नी) को अपने पत्नी (पति) से मीठी बातें करनी चाहिए। अब यह मीठापन, उस अवरोध को ठीक कर देगा। हमेशा बहुत प्रिय भाषण करना चाहिए तथा सब प्रकार के मीठे शब्दों को खोज निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रिय भाषण से संबोधन करना, दोष-भावना का सबसे अच्छा इलाज है, क्योंकि यदि आप किसी से रूखेपन से बातें करते हैं तो आप ऐसा अपनी आदत के कारण करते हैं या इससे आपको मजा आता हो, परन्तु जैसे ही आप यह कहते हैं, उसी समय आप महसूस करते- हे परमेश्वर! मैंने यह

क्या कह दिया?'' यह सबसे बड़ा दोष है। व्यक्ति को चाहिए कि हमेशा मीठे शब्दों को ढूँढें। देखो चिड़ियाँ कैसे चहचहाती है। उसी प्रकार आपको भी सभी प्रकार की मीठी बातों को सीखना है, जिससे आप अपने मीठेपन से लोगों को खुश कर सकते हैं। यह बहुत महत्त्व की बात है। नहीं तो, यदि आपकी बाईं-विशुद्धि अधिक खराब हो जाती है, तब आप बातचीत करने के एक खास तरीके (तकिया-कलाम) के आदी हो जाते हैं, जिससे आपके होंठ बाईं ओर मुड़ कर टेढ़े हो जायेंगे।''

निंदा करने वालों और अलोचना करने वालों का यह चक्र (विशुद्धि) आसानी से पकड़ में आ जाता है। दूसरों का दोष निकालना भी एक प्रकार का दोष है, जिससे विशुद्धि पकड़ में आ जाती है। विफलता, निराशा या खिसियाहट से निंदा या अपमान करने की प्रवृत्ति आती है। जब एक दिखावटी किस्म का विद्वान, असंभव परिस्थिति में अपने आपको असहाय पाता है, या जब उसकी कमजोरी पकड़ी जाती है, तब उसका अहंकार, पीछे से तीखे शब्दों में व्यंग्य करते हुए प्रहार करता है। प्रायः जाने-माने पत्रकार, राष्ट्र की तेजी से आगे बढ़ती हुई समस्याओं से ऊब जाते हैं, तब वे अपना रोष, आरोपों और आलोचनाओं के माध्यम से प्रकट करते हैं। कुंठाग्रस्त जनता भी, पत्रकारों की तीखी आलोचनाओं से संतुष्ट होकर अपना गुस्सा शांत करती है। फलस्वरूप, एक अपराध-पूर्ण प्रवृत्ति पलने लगती है, अहंकार पैदा होता है, वह गहरे नीले समुद्र के जैसे, स्वच्छ जल को पीला कर देता है (अर्थात् क्रोध के कारण सब उल्टा-पुल्टा हो जाता है)। जो भी हो, क्रोध, समस्या को हल नहीं कर सकता। यदि हमें समस्या का समाधान ढूँढना है, तो पहले हमारे अंदर धीरज और सहनशीलता आनी चाहिए। जैसा कि श्री माताजी अक्सर कहती हैं-कि अब हमें प्रेम की शक्ति से प्रयत्न करना चाहिए। आलोचकों के सुझाव, कपटी विद्वान् तथा निंदक (गालियाँ देने

वाले) हमें कहीं नहीं ले जा सके हैं। वे केवल समस्या के एक ही पक्ष की ओर देखते हैं और इस प्रकार, अदूरदर्शिता से काम लेते हैं। एक-तरफा या पक्षपातपूर्ण रवैये से केवल समस्या और भी जटिल हो जाती है। अत: पूरी तरह से सोचने के लिए माँ के प्रेम के समान एक विशाल हृदय की आवश्यकता है जिससे सबका स्वार्थ सिद्ध होता है। सरलता से क्षमा करना एक माँ का ही काम है। वह बच्चों के दोषों की ओर ध्यान न देकर, उनकी समस्याओं का समाधान करती है। उसके तरीके बहुत ही सूक्ष्म और सरल होते हैं, जो कि अहंकार को चोट पहुँचाए बिना काम करते हैं। अहंकार को भड़काने से केवल उल्टी प्रतिक्रिया होती है, वह सुधार के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होता। पाँचवे चक्र के क्षेत्र में अहंकार का यह सूक्ष्म खेल चलता रहता है। जिसने (इस संसाररूपी) रंगमंच (stage) पर अपना रोल अदा करना सीख लिया है, वह इस रंगमंच को पार कर जाता है। हर इंसान को इस रंगमंच पर अपनी भूमिका अदा करना पड़ता है। यह कला, हम अपनी माँ और दादी माँ से सीख सकते हैं क्योंकि उन्होंने बचपन से अब तक कैसे पाला-पोसा और बड़ा किया कि हमने सहजभाव से उनका कहना माना और आज्ञा का पालन किया। सीखने की उस वात्सल्य भरी प्रक्रिया में ऐसा कुछ भी नहीं था, जिससे हमें (या हमारे अहं को) किसी प्रकार की चोट पहुँची हो। बचपन बीत गया हो परन्तु आगे का खेल जारी रहता है। आइये, भगवान् श्रीकृष्ण की जादुई बाँसुरी की मधुर (अमृतवाणी) संगीत-ध्वनि (melody) को सीखें और उनकी लीला का साक्षी (observer) बनकर आनंद लें। प्राचीन भारतीय कहावत है -

ऐसा कोई भी पौधा नहीं जिसमें दवा का गुण न हो।
ऐसा कोई इंसान नहीं जिसमें कोई गुण न हो।
यह केवल हमारी कमजोरी है कि हम उसे प्राप्त नहीं करते।

पाँचवाँ चक्र दैवी-राजनीति (divine diplomacny) का केन्द्र है जहाँ पर मनुष्य ने कलात्मक ढंग से शत्रुता पर विजय प्राप्त करना सीखा (साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे)। विकास के इस चरण पर, भगवान् श्रीकृष्ण ने परमात्मा (विराट) की महानता की उद्घोषणा करने के लिए अवतार लिया था। धर्म की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, उन्होंने सबसे अंत में मनुष्य-जाति को बल का प्रयोग करने का अधिकार दिया। परन्तु इसे हिंसा समझने की गलती नहीं करना चाहिए, जैसे कि धार्मिक कट्टरता (fanaticism or fundamentalism) और जातिवाद (racialism) में होता है। महाभारत का महायुद्ध जो उस समय लड़ा गया, दर्शाया कि अंततोगत्वा सत्य और धर्म की विजय होती है।

पाँचवाँ चक्र बाँसुरी (flute) है, जो हृदय के मीठेपन को व्यक्त करता है। मधुर संगीत दूसरों को और स्वयं को भी आनंद प्रदान करता है। इस बल को, 'मुरलीधर' कहते हैं, जो बाँसुरी-वादन करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मांड की शक्ति के प्रतीक या स्वरूप हैं, जो बाँसुरी बजाते हुए चित्रित किए गए हैं। जैसे फुल का सद्गुण सुगंध पैदा करना है, उसी प्रकार मनुष्य का भी गुण, मधुरता प्रदान करना है। भाषा हृदय के मधुर संगीत प्रकट करने के लिए होती है मधुर वचन सामूहिकता को प्रोत्साहित करते हैं, संत कबीर ने कहा है-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय।।''

पाँचवें चक्र से होकर अनेक नाड़ियां गुजरती हैं, जो लघुचक्र (हंस चक्र) पर मिलती हैं। यह चक्र छठवें चक्र के ठीक पहले आता है। सभी प्रकार के संस्कार, जैसे मन के प्रशिक्षण (ट्रेनिंग), हमारी सामाजिक चेतना के अनुभव, शिक्षा नियोजन इस चक्र में बनाए जा सकते हैं। इन संस्कारों या

आदतों द्वारा, व्यक्ति उन वस्तुओं या बातों से प्रभावित होते हैं, जो मृतप्राय और निरर्थक हैं। फिर भी, आत्मसाक्षात्कार पाने के पश्चात्, इस चक्र के खुल जाने से हम अपने संस्कारों को देख सकते हैं और उन्हें ठीक रख सकते हैं। इस प्रकार हममें विवेक की शक्ति आती है। सतत् सतर्कता और अपने आप में सुधार से, विवेक-बुद्धि में परिपक्वता आती है। विराट् (श्रीकृष्ण) से हमें सामूहिक चेतना मिलती है। हम सब ''अल्लाह हो अकबर'' याने सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अंग-प्रत्यंग हैं। हमें उस पूर्णता में मिलकर एक हो जाना है। लघुता में महानता का उदय होना है (जैसे बूँद सागर में समाकर, सागर बन जाती है। बूँद की पूर्णता, सागर है। उसी प्रकार मानव की पूर्णता परमात्मा है। परमात्मा में मिल जाने के बाद फिर कोई प्रश्न या समस्या नहीं रहती। वह हमारी अमरता, आनंद, प्रकाश और चेतना की परम और शाश्वत् स्थिति है)। आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् सामूहिक चेतना हमारे अनुभव में आ जाती है। व्यक्ति अपने चक्रों और दूसरे के चक्रों को अपनी अंगुलियों के अग्रभाग पर महसूस करता है। हमारे केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के प्रकाशित हो जाने से यह अनुभव प्राप्त होता है। यह कोई मिथ्या बात या गलत धारणा नहीं है, बल्कि वास्तविक उपलब्धि है। जैसे अंडा पक्षी बनता है, उसी प्रकार व्यक्ति इस चेतना के नए आयाम में नया जन्म पाता है, जो सामूहिक चेतना है।

आज्ञा चक्र

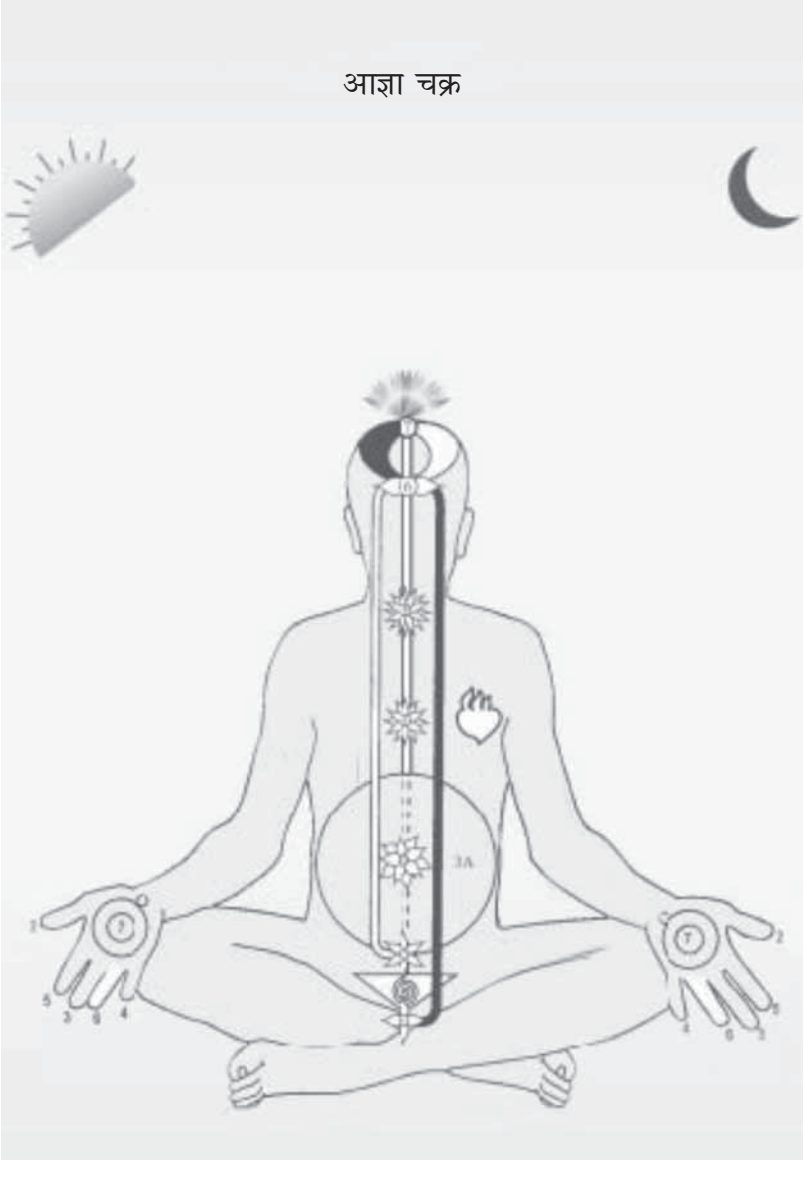

चित्र संख्या - 10

12
प्रवेश-द्वार

मोर ने विरोध प्रकट करते हुए कहा- '' क्या मैं अपने चमकीले पंखों को उखाड़ कर फेंक दूँ? सिर्फ इसलिए कि, ये केवल मुझे अभिमान करने के लिए प्रेरित करते हैं।'' सब साधकों को सतर्क हो जाना चाहिए और अपनी समझ-बूझ के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए क्योंकि उन्हें फँसाने के लिए जाल बिछाए गए हैं, जिन्हें वे देख नहीं पाते।

आप अपने अहंकार से सतर्क रहें क्योंकि वह आपकी इच्छा और कार्य-कुशलता को बढ़ावा देता है। नहीं तो अहंकार-जनित आपकी स्वेच्छाचारिता (मनमानी चाल) से बढ़कर मृत्यु-जनक उपद्रवी तत्व और कहीं नहीं है।

मनुष्य का प्रयास, जब तक सामूहिक चेतना में नहीं मिलता है, तब तक वह अहंकार का दास बना रहता है। यह आवश्यक है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के हर विभाग का प्रयोग और सर्वांगीण विकास हो, परन्तु यह उचित है कि उसे अपनी सफलताओं (विभागों की) का श्रेय अकेले नहीं लेना चाहिए। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि हम केवल सामूहिक कल्याण के लिए सामूहिकता के साधन हैं। (सामूहिकता, एक अकेले व्यक्ति का काम नहीं है)। (चित्र संख्या-१० देखें)

विकास के छठवें चरण पर तीन महान मसीहा (ईश्वर-दूत) इस संसार में आए; भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर और जीज़स क्राईस्ट। भगवान् बुद्ध ने करुणा और अहिंसा के संदेश का प्रचार किया। उन्होंने आठ प्रकार के मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने यह दिखाया कि कैसे मनुष्य अपने आपको मध्य

(संतुलन की स्थिति) में ला सकता है और अहंकार के प्रभाव से मुक्त हो सकता है, क्योंकि मध्यम मार्ग, कुंडलिनी के उत्थान का मार्ग है।

भगवान् महावीर ने मनुष्य को अपने प्रति अहिंसा बरतने का उपदेश दिया। उनका संदेश बहुत सूक्ष्म था-कि व्यक्ति, अपने विचार में भी हिंसा न करे। मन की कोमलता के द्वारा प्रतिअहंकार (super ego) से मुक्ति मिलती है। उन्होंने दिखाया कि कैसे मन के संस्कारों से ऊपर उठा जा सकता है।

जीज़स क्राईस्ट ने, अपने आपको सूली पर चढ़ा कर, मनुष्यों को अपना अहंकार समझने में सहायता की। मनुष्य में पश्चात्ताप की बहुत बड़ी भावना जागी, फलत: उसने अपने अहंकार की क्रूरता (बर्बरता) को देखा और इससे उसमें विनम्रता आई। क्राईस्ट ने मुनष्य-जाति को क्षमा कर दिया। उन्होंने कहा कि यदि कोई निष्कपट होकर क्षमा माँगे, तो उसे क्षमा किया जाता है। उन्होंने उन सभी को क्षमा कर दिया, जिन्होंने उन्हें सूली पर चढ़ाया था। हमें भी दूसरों को क्षमा कर देना चाहिए। हमारे हृदय की मलिनता (कपट) ही हमें नीचे झुकाती है। क्षमा करो और बीती बातों को भूल जाओ। महात्मा ईसा का अवतार, मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में एक बड़ी उपलब्धि थी, क्योंकि उन्होंने मानवता के दोषों को दूर किया और उसके अहंकार को चूर-चूर किया, उसे क्षमा का पाठ पढ़ाया और आत्मा के अमरत्व की घोषणा की।

सामूहिक विकास की प्रक्रिया में, यदि कोई एक व्यक्ति खोज करता है तो उससे दूसरों का भी भला होता है। उदाहरण के लिए, एक वैज्ञानिक का अनुसंधान, समुदाय को लाभ पहुँचाता है। हर किसी को स्वयं प्रयोग करने और सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है। उसी प्रकार, एक महान विचारक के मन में एक विचारधारा का जन्म होता है, तब सारी मानवता उसकी भागीदार बनती है। इसी प्रकार, महान शिक्षकों (उपदेशकों) और

अवतारों ने भी, हमारे लिए मार्ग प्रशस्त किया है। हमें उन प्रक्रियाओं से पुन: गुजरने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्होंने पहले ही हमारे लिए हल ढूँढा हुआ है। इस प्रकार यीशु ने द्वार खोला, यदि उन्होंने हमारे लिए यातना सही, तब हमें फिर से यातनाओं से गुजरने की क्या जरूरत है? (वास्तव में, हमारे प्रति उनके त्याग और कल्याण की भावनाओं का हमें आदर करना चाहिए, और उनका नाटक दुहराना नहीं चाहिए)।

दुर्भाग्यवश छठवाँ चक्र उस मिथ्या से अवरुद्ध हो जाता है जिसे हम अपने पूर्व-जन्मों के पापों का कारण समझते हैं। क्राईस्ट हमारे पूर्वजन्म में किए गए पाप-कर्मों को नष्ट करने के लिए आए। यह उन्होंने हमें क्षमा करके किया और इस प्रकार उन्होंने, हमारे आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया में एक भारी सफलता हासिल की। यह उनका महान योगदान था, इसीलिए हम उन्हें याद करते हैं। नहीं तो, उनके अवतार का कोई प्रयोजन नहीं था। चूँकि उन्होंने हमें क्षमा किया, इसलिए, अब हमें अपने आपको भूतकाल में किए गए दुश्कर्मों और अपराध-भावना के लिए, सजा देने की आवश्यकता नहीं है।

जो क्षमा करने में असमर्थ होते हैं, उनका यह चक्र पकड़ में आ जाता है। हम दूसरों को क्षमा करके या न करके क्या करते हैं-यह केवल एक मिथ्या बात है। जो कुछ भी दूसरों के विरुद्ध हम अपने मन में रखते हैं, वही हमारे मन की गंदगी है, जिससे हमारे अपने विकास में अड़चन आती है। इसके सिवाय, जिस व्यक्ति को हम क्षमा नहीं करते, उसे हमारे ऐसा न करने से कोई फर्क नहीं पड़ता। क्षमा न करना, अपने अहंकार को हवा देने का एक खेल है। अत: अहंकार पर विजय पाने के लिए हमें जीज़स क्राईस्ट से शिक्षा लेनी है। जो उनके उपदेशों पर ध्यान नहीं देते हैं, वे परमात्मा के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते हैं, जिसका उन्होंने (क्राईस्ट ने) वचन दिया है।

अब मनोविज्ञानी सहजयोग की शिक्षा की पुष्टि कर रहे हैं। ओरिएन्टल रिलीजन संस्था, टोकियो के सोफिया विश्वविद्यालय के डायरेक्टर, विलियम जान्सटन के शब्दों में-

सबसे बड़ा घातक घाव, जो मनुष्य की स्मृति में रहता है वह है, दबा हुआ क्रोध और क्षमा न करने की हठ। पहले पहुँचे हुए चोट के कारण, लोग दूसरों को (तुम ठीक नहीं हो) और अपने आपको (मैं ठीक नहीं हूँ) ऐसा समझ कर, उन्हें और स्वयं को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं, और भावनात्मक उतार-चढ़ाव में फँस जाते हैं। प्राय: अपने माता-पिता को अनजाने में क्षमा न करना और उनसे प्रेम करने से इन्कार करना मूल समस्या है। इस प्रकार की भावना से दूसरों के प्रति प्रेम करना और उन्हें क्षमा करना कठिन हो जाता है क्योंकि हम हमेशा अपने माता-पिता की परछाईं को, उन पर थोप देते हैं, जिन्हें हम मिलते हैं। व्यक्ति अपने चैतन्य मन से क्षमा करने में सफल हो सकता है (जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए पर्याप्त है) परन्तु अचेतन मन (unconscious mind) पीछे रह जाता है, जिससे हमारा प्रेम मानवीय स्तर से कहीं अधिक नीचे रहता है।

करुणा का वास्तविक रूप क्षमा है, जो वास्तव में प्रेम ही है। जब हम बीती बातें को भूल जाते हैं, तब हम नये खिलते हुए उस कमल के समान हो जाते हैं, जो हमारी सुगंध को सारे संसार में फैलाता है। (क्षमा करना कितनी बड़ी बात है जो एक महान व्यक्ति का काम है। क्षमा करके हम मुक्त हो जाते हैं अत: क्षमा का दूसरा नाम मोक्ष भी है। जब हम क्षमा करते हैं तब हम उस व्यक्ति को भूल जाते हैं और धीरे-धीरे उसका अस्तित्व हमारी स्मृति से मिट जाता है। ऐसा व्यक्तित्व, फिर सामूहिक अवचेतना में चला जाता है, हमें फिर वह सताता नहीं और उससे हमें मुक्ति मिल जाती है। वैसे ही, हम दानवता के सिद्धांत को भूल की टोकरी में डालकर, हमेशा के लिए उसे सुला

देते हैं और उससे मुक्त हो जाते हैं। ऐसा हम क्षमा की शक्ति से ही कर पाते हैं जिससे हमारा व्यक्तित्व निखर आता है)। बदले की भावना (क्षमा न करना) वास्तव में बचपना या नासमझी है क्योंकि हम आगे बढ़ना या परिपक्व नहीं होना चाहते। हम दूसरों को सजा देने का खेल नासमझी से खेलते रहते हैं। यदि हत्यारा बच निकला तो (उसके बदले) उसके बेटे को फाँसी पर चढ़ा दो और अंत में बदले की धुन, व्यक्ति का खुद नाश कर देती है-हम, इस शरीर-रूपी मंदिर में, जहाँ प्रेम करना एक कर्तव्य है, बदले की भावना नहीं जानते। जो भी अपने इस कर्तव्य से गिर जाता है परन्तु उसे मित्रता के दयावान हाथ संभाल कर रखते हैं, अंत में वह प्रकाश का क्षेत्र (ज्ञान) पाता है। यहाँ हर कोई एक दूसरे से आपसी प्रेम से बंधा है और जहाँ हर अपराध को क्षमा किया जाता है और यहाँ कोई देशद्रोही नहीं मिलता। जिनको यह (प्रेम का) बंधन आपस में मिला नहीं सकता, वे प्रकाश के काबिल नहीं हैं।

-मोजार्ट, लास्ट आपेग

क्राईस्ट ने मानवता को पवित्र आत्मा (holy spirit) की सत्यता के बारे में बताया, उनका आदर कैसे करना चाहिए, इस विशय में नियम बताए-

उन्होंने पवित्र आत्मा के प्रति किसी प्रकार असम्मानजनक व्यवहार से उत्पन्न पापों की चेतावनी दी। आदि-शक्ति (primordial holy spirit) की परछाईं हमारे भीतर कुंडलिनी के रूप में विराजमान है, जो हमारी माँ के प्रेम की शक्ति है। बपतिस्मा (Baptism) से उनका मतलब, इस गुप्त शक्ति (कुंडलिनी) को जाग्रत् करना था, जो अनेक पीढ़ियों से मनुष्य के शरीर में सुप्तावस्था में है और उन्हें आत्मसाक्षात्कार (self-realisation) देना था। हमारे सिर की ऊपरी सतह (तालुभाग का क्षेत्र) जो आकाश की ओर देखता है, एक छेद (द्वार) है, जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इसी द्वार को छेदकर कुंडलिनी हमें परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी ब्रह्म शक्ति के क्षेत्र से जोड़ती है। (प्रमाण

स्वरूप हाथों की अंगुलियों और कभी-कभी पूरे शरीर में प्रत्यक्ष हवा का अनुभव होता है)। वास्तव में ब्रह्मरंध के छेदने को बपतिस्मा (Baptism) कहते हैं। वासना-भरी निगाहों से इधर-उधर ताकना, नकारात्मक विचार और बुरी आदतें, इस चक्र को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। चूँकि दृष्टि की नाड़ी (optic nerve) इस चक्र से जुड़ी है, इसलिए बहुत अधिक दृश्य मनोरंजन से इस चक्र की शक्ति समाप्त हो जाती है। (मनोरंजन का अर्थ मन या अहंकार को खुश रखना है। इससे शरीर के अंग प्रभावित होते हैं। इसके विपरीत आत्मरंजन से आनंद आता है और साथ ही शरीर में शक्ति और स्फुर्ति बढ़ जाती है)।

जब मन और बुद्धि दोनों से हम परे हो जाते हैं, तब आज्ञाचक्र (परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने का द्वार) खुल जाता है और कुंडलिनी के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। क्राईस्ट ने कहा है कि जो बालकों के समान भोले-भाले हैं, वे ही इस द्वार से होकर गुजर सकते हैं।

परमात्मा के बारे में गलत धारणा बनाना भी इस चक्र के लिए बाधक है। जहाँ धार्मिक लोग सैद्धान्तिक हो जाते हैं, वहाँ वे केवल धर्मग्रंथों में उल्लिखित ज्ञान तक ही सीमित रहते हैं और पीर, पैगंबरों एवं संत-महात्माओं के उपदेशों के सार को नहीं समझ पाते हैं। (वे यथार्थ से दूर रहते हैं।) मनुष्य को बुद्ध भगवान् की आत्मा के (उपदेश के तत्व) अनुसार चलना चाहिए, न कि उनके नाम पर विकसित बौद्ध-धर्म के अनुसार। क्राईस्ट जैसा होना चाहिए, न कि क्रिश्चियन धर्म जैसा। 'रोल्स रॉयस' नामक कार का चित्र अपने गले में लटका कर चलने से यह मान लेना कि हम रोल्स-रॉयस में सैर कर रहे हैं, क्या इससे हम एक इंच भी चल सकते हैं? धार्मिक कट्टरता के कारण जो खून-खराबा हुआ है, वह किसी विश्व-युद्ध से भी बढ़ कर है।

भौंहों के बीच के बिन्दु पर ध्यान केंद्रित करना खतरनाक है क्योंकि इससे इस चक्र पर जोर पड़ता है और इसे हानि होती है। जो दृष्टि-सिद्धि (clairvoyant) वाले लोग हैं, वे अति-प्राकृतिक (supernatural) घटनाओं की ओर मुड़ जाते हैं, जो कुंडलिनी के उत्थान तथा आध्यात्मिक विकास के लिए उपयोगी नहीं है। (जो भी असामान्य है, मध्य में नहीं है, संतुलन में नहीं है, उसके लिए कुंडलिनी जागृति में कठिनाई हो सकती है। यह जरूरी नहीं कि सिद्धि-प्राप्त लोगों की कुंडलिनी जाग्रत् हो।) ऊपर उठने के बजाय ऐसे लोग स्पर्शज्या (tangent) की दिशा में फेंक दिए जाते हैं जो कि विकास की प्रक्रिया के विरुद्ध है। यह उनके भौतिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक है।

कुंडलिनी हमारी अंत: शक्ति (potential force) है, जिसके द्वारा हम वर्तमान में रह सकते हैं और अपने आपको उसमें संभाल सकते हैं; इस प्रकार हम भूत और भविष्य की ओर नहीं खींचे जा सकते। भूत (past) चुम्बकीय-धारा की तरह है, जो हमारे चित्त को अपनी ओर खींच लेता है और हमें अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना लेता है। फिर भी, जब कुंडलिनी जाग्रत् होती है तब उससे और भी ताकतवर चुबंकीय धारा बहती है, जो हमारे चित्त को मध्य में खींचकर ले आती है, जो हमारी वर्तमान की स्थिति है। जब तक हमारा चित्त भूतकाल से चिपका रहता है, तब तक इलाज करने वाला (मनोविज्ञानी) हमारे लिए उपयोगी हो सकता है परन्तु जब हम वर्तमान में अपनी सामान्य शक्ति (संतुलन की शक्ति) के बल पर जीते हैं तो हम मनोविज्ञान (psychology) से ऊपर उठ जाते हैं।

मान लीजिए, मन पदार्थ से ऊपर है, तब हम न तो भावना हैं और न ही बुद्धि। आत्मा तो मन से भी ऊपर की स्थिति में होती है। हमारा प्रयत्न आत्मा बनने का होता है, वर्तमान में रहने का होता है, जहाँ हम हमेशा आनंदित रहते

हैं, जहाँ हर क्षण ब्रह्मांड की महान सामूहिक चेतना-शक्ति से जुड़े रहते हैं और हमेशा उस स्तर पर कार्य करते हैं। परन्तु एक या दूसरे प्रकार से हम, सांसारिक परिस्थितियों के कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते हैं, तब या तो हम भूतकाल के निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, या अपने आपको भविष्य के सामने रख कर कार्य करते हैं। यह निर्णय करना हमारे ऊपर है कि हम भूत-भविष्य के कार्यक्रम में रह कर जियें। जब कि वर्तमान में किसी निर्धारित कार्यक्रम का बंधन नहीं है, केवल सहजता है, अर्थात् जो सामने है, उसी पर उसी समय कार्य करना है। जीवन का अर्थ तभी हमारे सामने खुल कर आता है, जब हम वर्तमान में रहते हैं। (वर्तमान की समस्याओं को सुलझाने के लिए, भविष्य की योजना बनाना बुद्धिमत्ता नहीं है। उन्हें वर्तमान में ही सुलझाना चाहिए।)

पशु अपने मन को व्यक्त नहीं कर सकता जबकि व्यक्ति (व्यक्त करने वाला) के पाय यह क्षमता है, जिससे वह किसी भी वस्तु की कल्पना कर सकता है, जिसका वास्तविकता में कोई अस्तित्व नहीं है। उदाहरण के लिए, एक कलाकार अमूर्तता (abstract) में कुछ व्यक्त करता है और फिर उसे कैनवस पर उतार सकता है। एक शिल्पकार एक नई प्रतिमा (छवि) की कल्पना करता है और उसे अपनी योजना (शिल्पकला) के अनुसार विकसित कर सकता है। इस (कल्पना) शक्ति से हम लोगों ने अपने मन के साथ खिलवाड़ करना सीख लिया है- जैसे हवाई किले बनाना और उन्हें गिरा देना। यह खेल (सोच-विचार का) मन की सबसे बड़ी शक्ति है। वह हमें अनेक सीमाओं को पार करने के योग्य बनाती है और अनेक आयामों में चलाती है। फिर भी कई बार, प्राय: हम अपने ही जाल में फँस जाते हैं। तब हम अपने आपको उससे मुक्त करने की कोशिश करते हैं। यह नाटक या खेल 'माया' कहलाता है।

माया अहंकार को चिढ़ाती है और उसके साथ लुका-छिपी का खेल खेलती है। यह खेल तर्क और बुद्धि की छाया में खेला जाता है। माया एक स्वप्न या भ्रम के समान है। जैसा कि स्वप्नावस्था में हमें लगता है कि घटनाएँ घट रही हैं, परन्तु जागने पर सब भ्रम समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार मन अपने आपको धोखा देता है। कभी-कभी हम कहते हैं-''ओह! मुझे विश्वास है कि, वह ऐसा ही था, मैं गलत धारणा में था।'' हमारा यह उपसंहार तर्क-सिद्ध मानसिक उपलब्धि है। परन्तु तर्कपूर्ण उपलब्धि की परिकल्पना भी एक भ्रम ही था, इस प्रकार बुद्धि भी भ्रम से पीड़ित हो जाती है। केवल जब हम अहंकार से ऊपर उठ जाते हैं, तभी दोष साफ दिखाई देता है। जब हम परम सत्य (परमात्मा) का अनुभव करते हैं, तब माया का परदा गिर जाता है। व्यक्ति का बुद्धि से लगाव हट जाता है और दृष्टिकोण एक तीसरे व्यक्ति के समान हो जाता है। जैसे प्याज के मध्य में पहुँचकर, फिर से उसकी परत नहीं निकाली जा सकती, उसी तरह का, यह अंतिम बिंदु है। मन भी प्याज के समान है। जब सब धारणाएँ और विचारधाराएँ एक-एक कर के मन से निकाल दी जाती हैं तब केवल शुद्ध आत्मा चमकती है।

एक अवास्तविक विचारधारा है कि 'सत्य' अनन्योश्रित है (अर्थात् वह दूसरे पर निर्भर करता है)। कि किसी व्यक्ति के लिए जो सत्य है, वह दूसरे के लिए सत्य नहीं हो सकता, ''यह मेरा रास्ता है, और वह आपका।'' यह सब मन की बातें हैं। कंप्यूटर (संगणक) जो दिखाता (display) है, वह पीछे से उसमें जो संकेत दिया जाता है, उसी पर निर्भर करता है। महात्मा सुकरात (Socrates) के जमाने में मनुष्य के ज्ञान की गहनता को, उसके बौद्धिक और तार्किक क्षमता के अनुसार परखा जाता था। बुद्धिमान् व्यक्ति तर्क के सहारे मनुष्य को 'गाय' जैसा सिद्ध कर सकता है। वकील की सफलता सत्य पर नहीं, अपितु उसकी तार्किक कुशलता पर निर्भर करती है। धार्मिक रूप से

कट्टर और राजनीतिज्ञ इस खेल के पुराने खिलाड़ी हैं।

सहजयोग किसी प्रकार की ऐसी कुशलता या बुद्धि पर निर्भर नहीं करता है। वह एक सूक्ष्म बल से कार्य करता है, जो भीतर है और बाहर भी है। भीतर कुंडलिनी हर कार्य के परिणाम का अनुभव करती है। जैसे-जैसे हमारी आत्म-चेतना, हमारे केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र को प्रकाषित करती है, हम यथार्थ में अपनी आत्मा को अपने भीतर, प्रकंपनों (vibrations) के रूप में व्यक्त करते हुए महसूस कर सकते हैं। जब हमारी अंतर-चेतना की ओर हमारा चित्त जाता है, तब हम हर किसी की कुंडलिनी के साथ चल सकते हैं। हम कुंडलिनी और उसके स्वभाव को तथा दूसरों में उसकी स्थिति को महसूस कर सकते हैं। इस प्रकार सामूहिक-चेतना हमारे अंदर स्थापित हो जाती है और हम एक विश्व-आत्मा (universal being) बन जाते हैं। कुछ समय पश्चात् हम यह नहीं कह सकते कि कौन-सा व्यक्ति दूसरा है (सब में एक परमात्मा की सत्ता को ही हम देखते हैं)। प्रेम का बल इतना महान है, कि हम अपनी अंगुलियों के इशारे से, दूसरों की कुंडलिनी को गतिशील कर सकते हैं। इस प्रकार मानव-जाति का सामूहिक उत्थान हो रहा है। इस प्रकार, इस अंधकार या भ्रम के युग में, सत्य और असत्य के बीच के भेद को स्पष्ट किया जा रहा है।

भीतर और बाहर हर चक्र, प्रकृति के (कम से कम) एक मौलिक नियम को व्यक्त करता है। प्रकृति के किसी भी नियम के उल्लंघन से चक्र पर असर पड़ता है, जो अंगुलियों पर गर्मी के रूप में महसूस होता है। इस प्रकार सृष्टि की सभी रचनाओं के पीछे जो शक्ति कार्य करती है, उसकी अनुभूति करना संभव हो गया है- वृक्ष के बीज से आसमान के तारों तक, अणु-परमाणु से नक्षत्रों के समुदाय तक और सूक्ष्मता से विशालता तक। जैसे ही व्यक्ति की 'पहचान करने की शक्ति' स्थापित हो जाती है, उसकी विवेक शक्ति जाग

जाती है। यह काले और सफेद के बीच अंतर जानने की मामूली शक्ति नहीं, परन्तु जीवन को चमकाने वाले गुणों को उजागर करने की कुंजी है। इस प्रकार हम अपने मन के घेरे से बाहर आ सकते हैं और जीवन को विश्व के व्यापक संदर्भ में देख सकते हैं। अब महान विकास की प्रक्रिया के चरम-बिंदु पर पहुँचने से, हम सब लोगों के लिए इसे अनुभव का समय आ गया है। श्री माताजी इसे फुलने-फलने या ''बाहर का समय'' कहती हैं जिसमें मनुष्य की निरंतर खोज की सामूहिक सफलता बहुत समीप है।

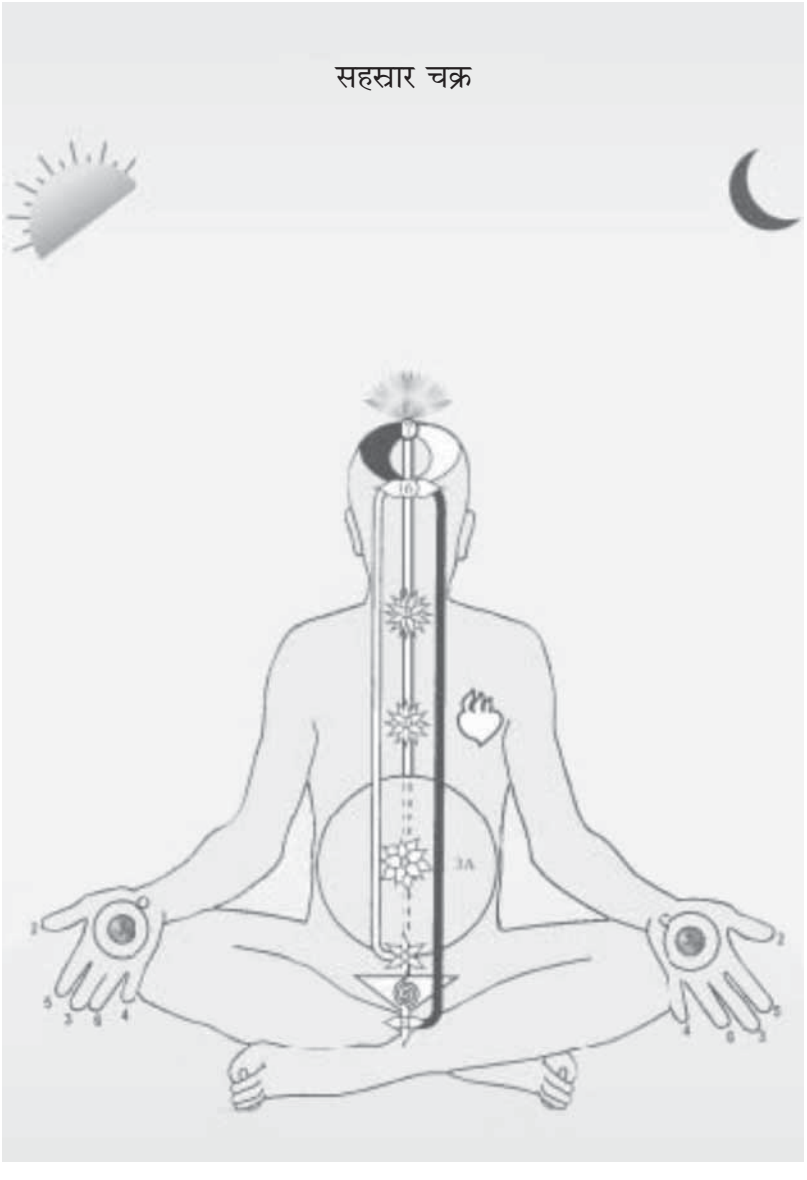

चित्र संख्या - 11

13
परमात्मा से नित्य निरंतर-योग

जब कुंडलिनी सब चक्रों को भेदकर ऊपर सातवें चक्र पर पहुँच जाती है, तब मनुष्य के भीतर पाँचवाँ आयाम खुल जाता है। वह मस्तिष्क को प्रकाशित कर देती है और व्यक्ति को 'वास्तविक आत्मा' का अनुभव होता है। इस आत्मा (true self) का हर कार्य, पवित्र और आध्यात्मिक होता है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति परमात्मा से होती है। मनुष्य मन और अहंकार से परे हो जाते हैं और वे अहंकार के बदले परमात्मा के उपकरण बन जाते हैं।

यह एक स्थिति है, जिसमें मनुष्य की चेतना, अपने स्वयं की चेतना का अनुभव करती है। सामूहिक-अचेतन (collective unconscious) सब चेतनाओं में व्याप्त रहता है। सामूहिक-अचेतन का मतलब यह नहीं कि उसमें कोई चेतना नहीं है। वास्तव में, वह चेतना का सूक्ष्मतम स्तर है, जिसे सांसारिक स्तर की चेतना व्यक्त नहीं कर सकती। जब कुंडलिनी सातवें चक्र को खोलती है, तब इस सामूहिक-अचेतन का अनुभव हमारी मध्य नाड़ीतंत्र में होता है। यह कोई प्राक्कल्पना (hypothesis) या मान्यता नहीं है, अपितु यथार्थता (actualisation) है। यथार्थ में व्यक्ति, कुंडलिनी का सबसे ऊपरी केन्द्र (ब्रह्मरंध्र) तक उठने का अनुभव करता है। पहले वह गर्मी का अनुभव करता है, परन्तु जब शरीर के आंतरिक तनाव दूर हो जाते हैं, तब उसे सिर की ऊपरी सतह पर, चैतन्य के प्रकंपनों (vibrations) के रूप में, हवा की कोमल सी शीतलता महसूस होती है। शांति, गंभीरता और आनंद स्थापित हो जाता है, और व्यक्ति पूर्णत: समता (एकलयता) महसूस करता है। यह एक सहज स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि कोई इसे मन की आँखों से देखने या उसका

प्रक्षेपण (projection) करने की कोशिश करे तो, उससे एक अलग प्रतिक्रिया होती है। जैसे भावुक व्यक्ति अतिभावुक हो जाता है और आत्मग्लानि तथा आसक्ति को उभारता है। जबकि यह एक सामान्य जीवंत-प्रक्रिया है, जब बीज पुष्ट होता है तब स्वत: उग जाता है। विलियम ब्लेक ने सच कहा है-

तू फलों से उनको अपनी अमूल्य सुगंध को बिखेरते देखता है और कोई यह नहीं कह सकता कि कैसे एक छोटे से केन्द्र से बीज उत्पन्न होते हैं। सब भूल कर देखें कि उस केन्द्र से अनन्त कैसे विस्तृत होता है।

मानवीय प्रयत्न केवल धरती में बीज बोना है। उसी प्रकार एक आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति का काम हमारी कुंडलिनी को जाग्रत् करना है, जिससे उसका संबंध उद्गम स्थान से हो जाय। अपनी जागृति से कुंडलिनी, हमारे विक्षिप्त चित्त (waivering attention) को भूत और भविश्य के दायरे से खींचकर वर्तमान की निर्विचारिता में ले आती है। इसके बाद वह (कुंडलिनी) अपनी स्वयं की चेतना से अपना कार्य करती है। यदि बहुत सी बाधाएँ हैं तो वह उन्हें साफ करती है। वह एक सरिता (नदी) के समान है, जो निरंतर, सब प्रकार की बाधाओं को पार करती हुई समुद्र की ओर अपना रास्ता बनाती है। (चित्र संख्या -११ देखें)

जब साधक, सब कुछ उस पर छोड़ देता है, तब वह चिंताओं को दूर कर देती है। तब साधक अपने भीतर, उस जीवंत-शक्ति के नये अनुभवों का आनन्द लेता है। ऐसा तभी होता है, जब उसमें कोई पूर्व-विचार या धारणा नहीं होती। जब हमारे अंदर उसकी जागृति स्थापित हो जाती है, तब वह हमारे लिए ज्ञान के मोती बिखेरती है। इसके बावजूद भी, शंकाओं से भरे मन वाला व्यक्ति, ऊपर नहीं उठ सकता।

''परन्तु जो व्यक्ति, अज्ञानी है और शंकालु स्वभाव का है, वह नष्ट हो

जाता है। (कहा गया है-'संशयात्मा विनश्यति') शंकालु (विश्वास न करने वाला) के लिए न यह संसार है और न ही इसके आगे और कोई दुनियाँ है, तथा न कोई सुख है।''

(भगवद्गीता, चौथा अध्याय, श्लोक ४०)

इस चक्र में, अन्य सभी छः चक्रों के सूक्ष्म आसन (पीठ) मौजूद हैं। हमारे हृदय में आत्मा का स्थान है, उसकी पीठ (seat) सिर के ऊपर मध्य (तालुभाग) में होता है। यह वही जगह है, जिसे कुंडलिनी भेदकर ऊपर जाती है। यह योग का बिन्दु है, जहाँ पर चित्त, आत्मा से मिल जाता है। कुंडलिनी जागृति के पूर्व चक्रों की शक्ति सीमित होती है, परन्तु इस योग के बाद, वह असीम हो जाती है क्योंकि-तब कुंडलिनी का सुनहरा धागा, मध्य नाड़ी से गुजरते हुए सभी चक्रों को माला के समान पिरो देता है और शक्ति के अनंत स्रोत से जोड़ देता है। उदाहरण के लिए, तालाब का पानी (न बहने के कारण) दूषित हो जाता है या सूख जाता है, जबकि झरने का पानी, जो कभी न समाप्त होने वाले स्रोत से बह कर आता है, वह हमेशा ताजा रहता है और कभी खत्म नहीं होता। इस प्रकार के यौगिक संपर्क हो जाने पर, परमात्मा के साथ तादात्म्य का सर्वोत्कृष्ट अनुभव होता है कि वे सबके जन्मदाता हैं और सब कुछ उनमें समाया है। यह संश्लेषण (synthesis) है, जो समग्र-संपूर्णता है। यह (यौगिक स्थिति) बेसुधावस्था, मूर्छा या बेहोशी की स्थिति नहीं है और न ही यह निष्क्रिय चेतना-विहीन बोध है, अपितु यह एक आनंद की, गतिशील स्थिति है। यह वह स्थिति है, जिसमें स्वभाविकता प्रवाहित होती है, बजाय इसके कि इसमें प्रतिक्रिया और घात-प्रतिघात हो। यह परम सत्य है, जिससे हम सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभव महसूस करते हैं। यह किसी भी सत् या असत् की धारणा, अनुमान और कल्पनाओं से परे है। इस सामूहिक-चेतना (collective consciousness) का कोई स्वरूप (आकार) नहीं है और

न ही इसमें कोई अहंकार है। यह कार्य और कारण से परे है।

जब व्यक्ति उस समग्र सामूहिक-चेतना में प्रवेश करता है, तब वह उस चेतना का दर्पण बन जाता है। कुंडलिनी की सुनहरी धुरी (shaft) मनुष्य के मस्तिष्क को अज्ञात आयामों में जाग्रत् कर देती है। मनुष्य का मस्तिष्क, सामूहिक चेतना का कंप्यूटर (संगणक) बन जाता है, जो विश्व के नियमों को निर्देषित करता है। व्यक्तिगत धारणाओं, धार्मिक समुदायों और अहंकार के लिए कोई स्थान (उसके मस्तिष्क) में नहीं रहता; व्यक्ति संपूर्ण का हिस्सा बन जाता है। एकता और अखंडता स्वाभाविक रूप से आ जाती है। हम कोई प्रयास किए बिना प्रकंपनों द्वारा अपने आपको सूक्ष्मतम संचार स्तर के अनुकूल बना सकते हैं। जब अहंकार को पार कर लिया जाता है, तब हम यथार्थ में, सौन्दर्य का आनंद लेते हैं। उस दशा में हमारे मस्तिष्क में कोई प्रक्षेपण (projections) नहीं होते। उस स्थिति में सब कुछ एक लीला (play) के समान लगता है। माया का जाल टूट जाता है। सत्य की अपरिवर्तनशील चेतना द्वारा अहंकार की पहचान स्पष्ट हो जाती है। उस स्थिति में स्थिर हो जाने पर, व्यक्ति व्यस्त जीवन की धुरी में भी जाग्रत्-चेतना की स्थिति कायम रखता है। जब मानवीय-चेतना का अनंत से ताल-मेल बैठ जाता है तब वह भी अनंत हो जाती है। ऋषि-मुनियों ने उसे काव्य की भाषा में प्रियतम और प्रियतमा का मिलन कहा है। भगवान् बुद्ध ने उसे 'शून्य' (void) कहा है, महावीर ने उसे 'निर्वाण' कहा है और जीज़स क्राईस्ट ने उसे 'परमेश्वर का राज्य' कहा है। संत ज्ञानेश्वर ने कहा है कि -

कुंडलिनी अपनी शक्ति को तब तक बनाए रखती है, जब तक वह सर्वशक्तिमान ब्रह्म में नहीं समा जाती है। ब्रह्मरंध्र पर उसे स्थिर रखने से उसके आयामों को विस्तार मिलता है। उसमें यह धारणा बन जाती है- ''मैं परब्रह्म

(परम) हूँ'' और उस वास्तविक परम ब्रह्म परमात्मा से आलिंगनबद्ध हो जाती है। पंच महाभूतों के परदे तब गिर जाते हैं और वे दोनों, जीवन-प्राण तथा परमात्मा आपस में मिल जाते हैं और वह आकाश (sky) के साथ अपने आपको एकाकार करके सर्वशक्तिमान ब्रह्म में समा जाती हैं। जैसे समुद्र का पानी शुद्ध होकर बादल बनता है, फिर बरसता है तथा नदियों और जल-धाराओं के रूप में बहकर अंततोगत्वा फिर से समुद्र में मिल जाता है। उसी प्रकार, जीवात्मा (individual soul) मनुष्य का रूप धारण कर, परमात्मा में प्रवेश करती है ओर उसके साथ योग प्राप्त करती है।

तब वहाँ ऐसा कुछ नहीं रह जाता है, जिसे ''ज्ञान की वस्तु'' कहते हैं, और जो कुछ भी आगे कहा जाता है वह सब व्यर्थ है। वह स्थिति जहाँ से शब्द वापस आ जाते हैं, जहाँ हर प्रकार की कल्पनाएँ और विचारधाराएँ समाप्त हो जाती हैं, जहाँ पर कितनी भी दूरी या नजदीकी का विचार नहीं पहुँच पाता, ये उस स्थिति का विशेष सौन्दर्य है। वह अनादि है, अनंत है, परमात्मा है और वास्तव में जो विश्व की उत्पत्ति का प्रथम बीज है, जो योग-विद्या का अंतिम लक्ष्य है और परमानंद भरी चेतना है। सब आकारों, मोक्ष की स्थिति, सब आरंभ और अंत वहाँ निर्मूल हो जाते हैं ..... जो अंत तक भगीरथ (अथक) प्रयत्न करते हैं, वे आत्मा के स्वरूप को पाते हैं और अंतिम लक्ष्य को पा लेते हैं।

ध्वनि, तेज (प्रकाश) और उसकी भव्यता, सब अदृष्य हो जाते हैं और वहाँ पर ''मन पर विजय प्राप्त करना'' या वायु को रोकना (प्राणायाम) या ध्यान पर निर्भरता ऐसा कुछ भी नहीं रह जाता, वहाँ कोई कल्पना या विचार भी नहीं रह जाता। वास्तव में इस अवस्था को मानना चाहिए कि यह वह साँचा (mould) है जिसमें सभी स्थूल तत्व पिघल जाते हैं।

वह आत्म-चेतना की स्थिति है, जिसमें व्यक्ति, परमात्मा की स्वचालित (automatic) होने वाली शक्ति को देखता है, जो दिव्य-प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति है, जिसका वास्तविक स्वभाव स्वयं प्रस्फुटित होना, आनंदित होना, ''सत्-चित्-आनंद'' है।

14
दैवी-प्रकंपन

ब्रह्मांड के सामूहिक ढाँचे, लयबद्ध नृत्य के समान हैं जो असंख्य मेल-जोल, एक दूसरे के अदल-बदल तथा प्रकंपनों की आकृतियों से बने हुए हैं। कुछ भी स्थिर नहीं है। सबमें चेतना का प्रकंपन विद्यमान है। मनुष्य शरीर की प्रत्येक कोशिका (अणु-परमाणु) कम्पायमान है और वे प्रकंपनों का प्रसारण तथा अवशोषण (absorption) करती हैं। सभी अवतारों ने उन चैतन्य-प्रकंपनों (दैवी-प्रकंपनों) (divine vibration) का वर्णन किया है। क्राईस्ट ने उन्हें ''पवित्र-आत्मा की ठंडी फुहार'' कहा है। आदिशंकराचार्य, इन ठंडी चैतन्य-लहरों से आनंद-विभोर हो गए। संत ज्ञानेश्वर विस्तृत रूप से व्याख्या करते हुए कहते हैं- ''जीवन-प्राण कुंडलिनी से निकल कर प्रवाहित होता है तथा शरीर के भीतर और बाहर भी शीतलता की संवेदना पैदा करता है।''

सहजयोग की ध्यान-पद्धति द्वारा इन अनुभूतियों को प्रमाणित कर सकते हैं (इनका सबूत, आप स्वयं परख करके प्राप्त कर सकते हैं)। जब कुंडलिनी, सिर की ऊपरी सतह तालुभाग (ब्रह्मरंध्र) को भेदती है, तब उन्हीं चैतन्य-लहरों या दैवी-प्रकंपनों (divine vibrations) की अनुभूति सिर के ऊपर और हाथ की अंगुलियों के अग्र भागों में होती है।

सहजयोग की विधि से दैवी-प्रकंपनों का अपने तथा दूसरों के शरीर के अंदर चक्रों की स्थिति के बारे में, अनुभव करना संभव हो गया है। इन प्रकंपनों (चैतन्य लहरों) को क्षति-ग्रस्त चक्रों की ओर निर्देशित किया जा सकता है और उनका इलाज किया जा सकता है। यह देखा गया है कि अनेक

जटिल किस्म के लोगों में प्रकंपनों की पहली बाढ़ के बाद, चक्रों की मरम्मत करने के लिए, कुंडलिनी नीचे उतर जाती है (पर उसके कुछ धागे ब्रह्मरंध्र से होकर मुख्य-स्रोत से हमेशा संबंध बनाए रखते हैं)। सहजयोग में प्रकंपनों की सभी जानकारी मुफ्त में दी जाती है। जब सहजयोगी उचित रूप से सहजयोग में स्थिर हो जाता है, तब वह दूसरे लोगों को, किसी कठिनाई के बिना कुंडलिनी जागृति द्वारा, आत्मसाक्षात्कार दे सकता है, क्योंकि वह अपनी अंगुलियों पर दूसरे के हर चक्र को महसूस कर सकता है। (चित्र संख्या-१२ देखे)

जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के जाल में फँस जाते हैं, तब भी हम अपने को प्रकम्पनात्मक-चेतना (vibratory awareness) द्वारा संतुलन में रख सकते हैं। अगर हम अपने चैतन्य लहरियों के संवेदनशील हो जाते हैं तो यदि बाहर की कोई चीज हमारे प्रकंपनों में बाधा डालती है, तब उसके द्वारा होने वाले परिवर्तनों को हम स्वयं में अनुभव कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समुदाय की संगति में रहते हैं, जिनसे उष्ण प्रकंपन निःसृत (emit) होते हैं, तब हम तुरन्त उस बाधा को, जो हमारी शांति में खलल डालती है, महसूस कर सकते हैं। उष्ण प्रकंपन (hot vibrations) का मतलब होता है कि खराबी (negativity) हमारे भीतर घुसने का प्रयत्न कर रही है। हमारी प्रतिरक्षा का तंत्र, तुरन्त सक्रिय हो जाता है, तथा हमें उन खराब या बुरे झटकों (धक्कों) से बचाने के लिए प्रेरित करता है। जिस प्रकार हम अपने शरीर को खराब मौसम से बचाते हैं, उसी प्रकार हम अपने प्रकंपनों को नकारात्मक प्रभाव से बचा सकते हैं। अतः यह जरूरी है कि हम अपने प्रकंपनो (की भाषा) को समझें, ताकि हमारे भीतर उनके प्रति संवेदनाएँ बढ़ें, जिससे हम अपने आपको उनके अनुकूल बना सकें और उनकी व्याख्या (decoding) करने के तरीके सीख लें। यह सहजयोग का सूक्ष्म (meta) विज्ञान

है।

सहजयोग, मानवजाति के लिए श्री माताजी निर्मला देवी का अमूल्य उपहार है, जिसमें अनेक तरीके बताए गए हैं, जिनसे हम अपने ध्यान की दशा में सुधार कर सकते हैं और प्रकंपनों की सहायता से अपने चक्रों को मजबूत (शक्तिशाली) बना सकते हैं।

डा. बी. भट्टाचार्य अपनी रचना ''दी साइंस ऑफ कॉस्मिक रे थेरापी'' में लिखते हैं कि - ''किसी व्यक्ति के फोटोग्राफ से, उस व्यक्ति के जैसा प्रकंपन निकलता है और इसलिए, जो ब्रह्मांडीय किरणें (cosmic rays) पैदा की जाती हैं और उस मरीज के फोटोग्राफ पर केंद्रित की जाती है, वे तत्क्षण प्रकाश की समान्य गति से चलती हैं तथा उस विशेष व्यक्ति को पहचान जाती हैं और उसे आच्छादित कर लेती हैं। ये ब्रह्मांडीय किरणें तुरन्त व्यक्ति के भीतर एक उचित स्थान पर अपना कार्य करती हैं। आत्मसाक्षात्कार के बाद, व्यक्तियों को परम पूज्य श्री माताजी निर्मला देवी या उनके फोटोग्राफ से भी ठंडी चैतन्य लहरों का एक समान प्रकंपन प्राप्त होता है। इससे डॉ. बी. भट्टाचार्य की खोज की पुष्टि होती है, कि किसी के फोटो में उस व्यक्ति के ही प्रकंपन होते हैं। सहजयोग की इस नई प्रकंपनात्मक चेतना (vibratory awareness) में, व्यक्ति के फोटो से उसकी समस्या को जानना सरल हो गया है।

श्रीमाताजी के मुख से बहता हुआ चैतन्य का प्रवाह
चित्र संख्या 12 (a)

श्रीमाताजी को स्पर्श करता हुआ चैतन्य
चित्र संख्या 12 (b)

श्रीमाताजी के हाथों से बहता हुआ चैतन्य प्रवाह
चित्र संख्या 12 (c)

सामूहिक ध्यान में सहजयोगी-चैतन्य का प्रवाह उनके ऊपर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। चित्र संख्या 12 (d)

सामूहिक ध्यान में सहजयोगी-चैतन्य का प्रवाह उनके ऊपर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। चित्र संख्या 12 (e)

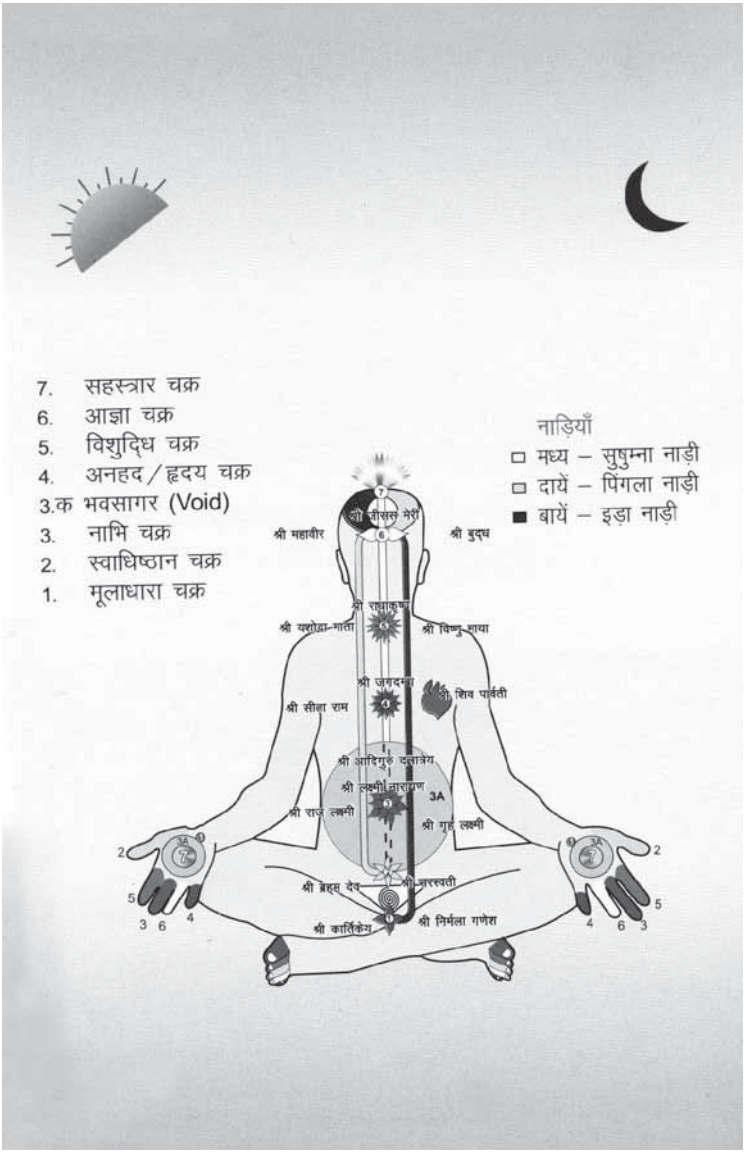
7. सहस्त्रार चक्र
6. आज्ञा चक्र
5. विशुद्धि चक्र
4. अनहद / हृदय चक्र
3.क भवसागर (Void)
3. नाभि चक्र
2. स्वाधिष्ठान चक्र
1. मूलाधारा चक्र
नाड़ियाँ
मध्य – सुषुम्ना नाड़ी
दायें – पिंगला नाड़ी
बायें – इड़ा नाड़ी
श्री महावीर
श्री बुद्ध
श्री राधाकृष्ण
श्री यशोदा-माता
श्री विष्णु-माया
श्री जगदम्बा
श्री सीता राम
श्री शिव पार्वती
श्री आदिगुरु दत्तात्रेय
श्री लक्ष्मी नारायण
श्री राज लक्ष्मी
श्री गृह लक्ष्मी
श्री ब्रह्म देव
श्री सरस्वती
श्री कार्तिकेय
श्री निर्मला गणेश

चित्र संख्या - 13

15
ध्यान

प्राय: 'ध्यान' शब्द का प्रयोग, एक धुंध क्षेत्र जैसा, अस्पष्ट रूप से किया जाता है। ध्यान की परिभाषा नहीं दी जा सकती। परन्तु हमें इसकी जाँच कर लेनी चाहिए कि साधक का उससे क्या मतलब है। साधक का अभिप्राय, शारीरिक इलाज के लाभ से लेकर कुछ आध्यात्मिक विचारों की जानकारी हासिल करना तक हो सकता है। सामान्य तौर पर ध्यान का उद्देश्य संपूर्ण में मिलकर एक हो जाना है। 'संपूर्ण' का विचार अत्यंत सूक्ष्म है, जिसे 'परमेश्वर' (God) कहा जा सकता है, जो हमारे पिता (जन्मदाता) या 'सामूहिक चेतना' (collective consciousness) है। साधक ने निस्सन्देह, परमेश्वर के बारे में ग्रंथों का अध्ययन किया हो, उसकी प्रशंसा में भजन सुना हो, परन्तु उसका अनुभव कैसे करें? (इसका उत्तर जानना उसके लिए महत्त्वपूर्ण है।) 'ध्यान' इसका स्पष्ट उत्तर है। परन्तु ध्यान कैसे करें? (जिससे परमेश्वर का अनुभव हो) सहजयोग ध्यान इसी अनुभव की तरफ एक प्रयास है जिससे अपनी आत्मा की आवृत्ति (frequency) से स्वयं अपना ताल-मेल बैठाया (by turning one self) जाता है। शुरु-शुरु में व्यक्ति शीघ्र ही यह संपर्क स्थापित न कर सके, पर वह निर्विचारिता के झोंकों का अनुभव कर सकता है। नियमित रूप से ध्यान करने से यह स्थिति धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है। जब सब चक्र अपनी स्वस्थ हालत में आ जाते हैं, कुंडलिनी भी सातवें चक्र पर स्थित हो जाती है और मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) को प्रकाशित कर देती है, जिससे हम पूरी तरह से अपनी आत्मा के प्रति सजग हो जाते हैं। हम स्वयं आत्मा बन जाते हैं। यह ध्यान की पूर्णता है। फिर भी, हमें इसकी जाँच कर लेनी चाहिए कि इसके पहले क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

अक्सर आत्मनिरीक्षण (introspection) की अवधि में हमें पता चलता है कि विभिन्न मनोदशायें (moods) हमें प्रभावित करती हैं। इन भावों का क्या अर्थ है? यदि सारा दिन अच्छी तरह से बीता है, जब-जब हम अपनी आँखें मूँद कर ध्यान करते हैं, तो हमें बड़ा संतोष मिलता है और ध्यान भी बहुत अच्छा होता है। यदि हम बहुत उत्तेजित रहते हैं, तब हमारा मन अशांत रहता है और इससे हमारे ध्यान में बड़ा फर्क पड़ता है। ये बातें अहंकार या प्रतिअहंकार से आती हैं, क्योंकि आत्मा में कोई भाव नहीं होते।

जब हम ध्यान करने के लिए अपनी आँखें बंद कर लेते हैं, तब हम अचानक अनेक विचारों की बौछारों से घिर जाते हैं। सबसे पहले तो हमें विचारों का साक्षी (witness) बनना चाहिए। विचारों को आने दीजिए और जाने दीजिए। ठीक उसी प्रकार, जैसा कि व्यक्ति, सड़क की बाजू में खड़ा हुआ, आने-जाने वाली मोटर-गाड़ियों को देखता रहता है। धीरे-धीरे एक समय आयेगा जब दो विचारों के बीच जगह (समय का अंतराल) बन जायेगी और तब यह समय का अंतराल (period) और भी बड़ा होता जायेगा अर्थात् दो विचारों (एक के बाद दूसरे) के बीच की दूरी बढ़ती जायेगी। उसके बाद की स्थिति, निर्विचारिता की जगह पर, आपको ठहर जाना है। जैसे ही विचारों की भीड़ (जुलूस) से हट कर, ध्यान निर्विचारिता की चौड़ी जगह पर केंद्रित हो जाता है, तब व्यक्ति अवचेतन मन (subconscious mind) को देखता है। जब वह (अवचेतन मन) चेतन स्थिति द्वारा महसूस होता है, तब वह चित्त को अपनी ओर आकर्षित करना बंद कर देता है।

प्रारंभ में हम भूतकाल के मंडराते विचारों के कारण अशांत या उद्विग्न रहते हैं, पर जब धीरे-धीरे, साक्षी-स्वरूप होकर देखने का अभ्यास होता जाता है, तब उन पर काबू पा लिया जाता है, जैसे कोई ठोकर या त्रासदी एक गहरे घाव का निशान छोड़ जाती है। जितना अधिक हम उससे परेशान होते

हैं, उतना ही अधिक वह हमें परेशान करता है। त्रासदी (tragedy) और उसकी दु:खपूर्ण स्थिति में रहने से हमारे स्वभाव में खिन्नता या उदासी आ जाती है। हमारा जन्मजात स्वभाव ब्रह्मांडीय बल के सदृश्य सहज है, जबकि हमारा दूसरा स्वभाव बाहर से प्राप्त किया हुआ (acquired) होता है। इसे आदत (habit) कहते हैं। उसी प्रकार बचपन के कुछ दबाव या आघात या कष्ट ने हमारी आदत पर, एक विशेष छाप छोड़ी होगी। बहुत से भय, विक्षिप्तता (traumas) तथा बुढ़ापे का टेढ़ा-बर्ताव (सठिया जाना) मन के गहरे प्रकोष्ठ से आते हैं। ध्यान के समय, व्यक्ति इन आकृतियों से अवगत हो जाता है, और उन्हें सुधारने की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है। यह, वह सुधार नहीं, जिसे कोई दूसरा व्यक्ति कर सकता है। हर किसी को अपना सुधार स्वयं करना है। जैसे हम ध्यान में स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं, तो हमारा चित्त बड़ा तेज हो जाता है तथा मन सूक्ष्म। उस स्थिति में व्यक्ति तत्क्षण मन के परदे पर होने वाली घटनाओं को देख सकता है तथा उनकी प्रतिक्रियाओं के बुलबुलों (bubbles) को, जो मंथन से पैदा होते हैं, उन्हें भी देख सकता है। उस समय विवेकपूर्ण होकर देखने से ये आकृतियाँ निष्क्रिय होकर नष्ट हो जाती हैं और अवचेतना के क्षेत्र में वापस नहीं लौट सकतीं। परन्तु भूतकाल के संस्कारों के बड़े गहरे चिह्नों का कुंडलिनी इलाज कर देती है। टेढ़ी-मेढ़ी, नुकीली आदतों को संतुलन में लाने के लिए कुंडलिनी अपने प्रकंपनों को अनेक लययुक्त आकारों के समान गतियों में फैला देती है। उसके प्रकंपन चक्रों को शुद्ध, स्वस्थ करतें हैं। ध्यान में विचारों का समावेश होना किसी महत्त्व का नहीं है। व्यक्ति का चित्त ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि प्रतिबिंब और उसकी पहचान आ सकती है, परन्तु वह ध्यान का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। हमें ध्यान को निर्देशित कला की तकनीकि, दिवास्वप्न, स्वयं पर थोपे गए नियम के प्रशिक्षण के अनुसार बदलना, स्वयं-सम्मोहन या कोई मनोवैज्ञानिक,

मानसिक, शारीरिक विश्राम के इलाज करने की पद्धति जैसों से तुलना नहीं करनी चाहिए। ध्यान 'अनुभव सीखने' की एक कला है जो पूर्वनिर्धारित तरीके से समझने और अनुभव करने का तरीका नहीं है, जो आदत से ध्यान के खास तरीकों या विशेष जानकारी के फलस्वरूप अपनाया जाता हो।

सहस्रार में चित्त (और दाहिना हाथ) रखकर सोना बहुत विश्रामदायक है। इस स्थिति में चित्त, अवचेतना (subconscious) के क्षेत्र से आने वाले विचारों में नहीं घुसता। नींद बड़ी गहरी आती है, और व्यक्ति पूर्णत: स्वस्थ होकर जागता है। नींद की घड़ी छोटी हो सकती है, परन्तु, परमेश्वर के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति-रूपी मुख्य धारा (mains) से किसी अवरोध (resistance) के बिना जुड़कर शरीर रूपी बैटरी का पुनर्भरण (recharging) शीघ्र और सरलता से होता है। यदि यह संपर्क लगातार दिन भर बना रहे तो कोई थकान नहीं होती। इस अवस्था में, ऐसी कोई धारणा नहीं होती कि व्यक्ति कुछ कर रहा है। वह केवल एक घटना है, जैसे एक अज्ञात संचालक एक सुन्दर संगीत-पार्टी का निर्देशन कर रहा हो और हम शांतिपूर्वक उसका आनंद ले रहे हों। वह चेतना कि ''मैं कर रहा हूँ'' व्यक्ति को नीचे गिराती है। ''मैं' की चेतना मन में चिंता की लहरें पैदा करती हैं, जो भयानक मात्रा में बढ़ जाती है जिससे मानसिक और शारीरिक थकान हो जाती है। चिंता की हालत में, मुख्य धारा से सजीव-संबंध टूट जाता है और व्यक्ति के स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करने की स्थिति को, अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र की सीमित ऊर्जा पर निर्भर रहना पड़ता है। प्राय: अंतिम दशा में, अनुकंपी ऊर्जा भी समाप्त हो जाती है, तब व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो सकता। सहजयोग की पद्धति से सबसे पहले व्यक्ति को संतुलन में लाकर, मुख्य धारा से उसका सजीव-संबंध स्थापित किया जाता है या कुंडलिनी को उठा कर उसे आत्मसाक्षात्कार देकर मध्य में लाया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति, मुख्य धारा की अनंत शक्ति की आपूर्ति

से जुड़ जाता है जिससे उसके स्वास्थ्य-लाभ में सहायता मिलती है। आत्मसाक्षात्कार के बाद व्यक्ति को ज्ञात होता है कि ध्यान, हमारे चित्त की 'वर्तमान में उपस्थिति (presence in present)' की एक स्थिति है। वहाँ कोई 'कर्ता' नहीं है। वास्तव में, हम ध्यान नहीं करते, परन्तु हम ध्यान में होते हैं। इसके लिये सामान्य जीवन से दूर भागने की आवश्यकता नहीं है।

सहजयोग-ध्यान पर नैदानिक निष्कर्श

ध्यान करने वाले मरीजों के विभिन्न समूहों पर किए गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि-ध्यान का अभ्यास करने से, स्नायु तनाव-संबंधी कमजोरी, चिंता, चिड़चिड़ापन और उच्च रक्तचाप में कमी आई। उससे आत्म-नियंत्रण, आत्म-उपलब्धि और जीवन की खुशी में वृद्धि हुई। प्रोफेसर यू.सी. राय के अनुसार-:

तनाव के कारणों को नियंत्रित करने वाली औषधियों का इस्तेमाल, उनके बाद के परिणाम और आदत डालने वाले गुणों के बावजूद जारी रहा। फिर भी, दु:खदायी और भारी तनाव की समस्या का सामना करने के लिए यह लंबे समय के लिए संतोषजनक इलाज नहीं है। इसलिए शरीर पर तनाव के प्रभाव को कम करने के लिए कई किस्म की आराम देने वाली तकनीकों, ध्यान आदि के प्रयोग किए गए। हाल ही में, श्री माताजी निर्मला देवी ने दिखाया कि सहजयोग सीखना और अभ्यास करना सरल है और वास्तव में, वह सामान्य और बिना परिश्रम का है। वह शरीर की अंदरूनी तकनीक पर निर्भर है। हाथ की हथेली और सिर के तालुभाग पर ठंडी हवा का अनुभव करना, कुंडलिनी की जागृति को सिद्ध करता है। कुंडलिनी की जागृति के बाद व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार ओर निर्विचारिता की स्थिति में चला जाता है, जो शरीर और मन की आनंदपूर्ण अवस्था तथा बहुत बड़ी शान्ति की अनुभूति है।

इसके संचार साधन में सहजयोग से शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया ताकि तनाव की स्थिति में सहजयोग की भूमिका को स्पष्ट किया जा सके। इसके लिए-हृदय गति की दर, रक्तचाप, शरीर की चमड़ी का ओमिक प्रतिरोध, खून में दुग्धाम्ल (lactic acid) और मूत्र में विनाइल मंडेलिक अम्ल का अध्ययन किया गया था।

सहजयोग के अभ्यास से यह सिद्ध हो गया कि उससे दोनों, प्रशिक्षाणार्थी और प्रशिक्षित सहजयोगियों में विशेष शारीरिक परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन अनुकंपी और परानुकंपी संवेदनाओं के बीच संतुलन लाने से हुए। अनुकंपी प्रभाव, जो अक्सर तनाव की स्थिति में देखा जाता है वह कम हो जाता है। इस प्रकार सहजयोग व्यक्ति को तनाव से मुक्ति देने में सहायक है तथा तनाव के कारणों को रोक देता है।[१]

हाल के अध्ययनों से, ध्यान के दौरान होने वाले निम्नलिखित परिवर्तनों के बारे में पता चला है।[२]

१. ध्यान के शुरु में अल्फा-लहर (Alpha wave) की तीव्रता बढ़ती है।

२. ध्यान के बाद थीटा-लहर (Theta wave) क्रियाशील होती है जो अक्सर अल्फा-लहर के साथ मिली-जुली रहती है।

३. गहरे ध्यान के दौरान या समाधि की स्थिति में उच्च आवृत्ति (high frequency) की बीटा-लहरें (Beta waves) उत्पन्न होती हैं।

४. हृदय की गति, साथ में सांस लेने की दर, प्राण-वायु (oxygen) की खपत में अप्रत्याशित और नाटकीय रूप से कमी आ जाती है। साथ में चमड़ी की चमक और सिर के ऊपर ठंडी वायु का प्रभाव बढ़ जाता है।

उद्धरण:- मनुष्य के शरीर और मन पर सहजयोग के प्रभाव संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन, तथा तनाव संबंधी रोगों को रोकने में उसके योगदान पर निम्न पत्रिका में अंग्रेजी भाषा में लेख प्रकाशित किए गए तथा किताब छपी।

1. Journal of the International Medical Science Academy, Vol.2, Mar.1988 by Prof.U.C.Rai, Former Head of the Department of Physiology, Sucheta Kripalani Hospital, New Delhi.

2. मनौवैज्ञानिक-शारीरिक बीमारी के मरीजों पर सहजयोग के अभ्यास का प्रभाव और सहजयोग द्वारा कुंडलिनी जागृति से शारीरिक प्रभाव। अंग्रेजी by Dr.Deepak Chugh and Dr.Sandeep Sethi (the second paper has already earned a Doctorate).

3. Book "Medical Science Enlightened" by Prof. U.C.Rai.

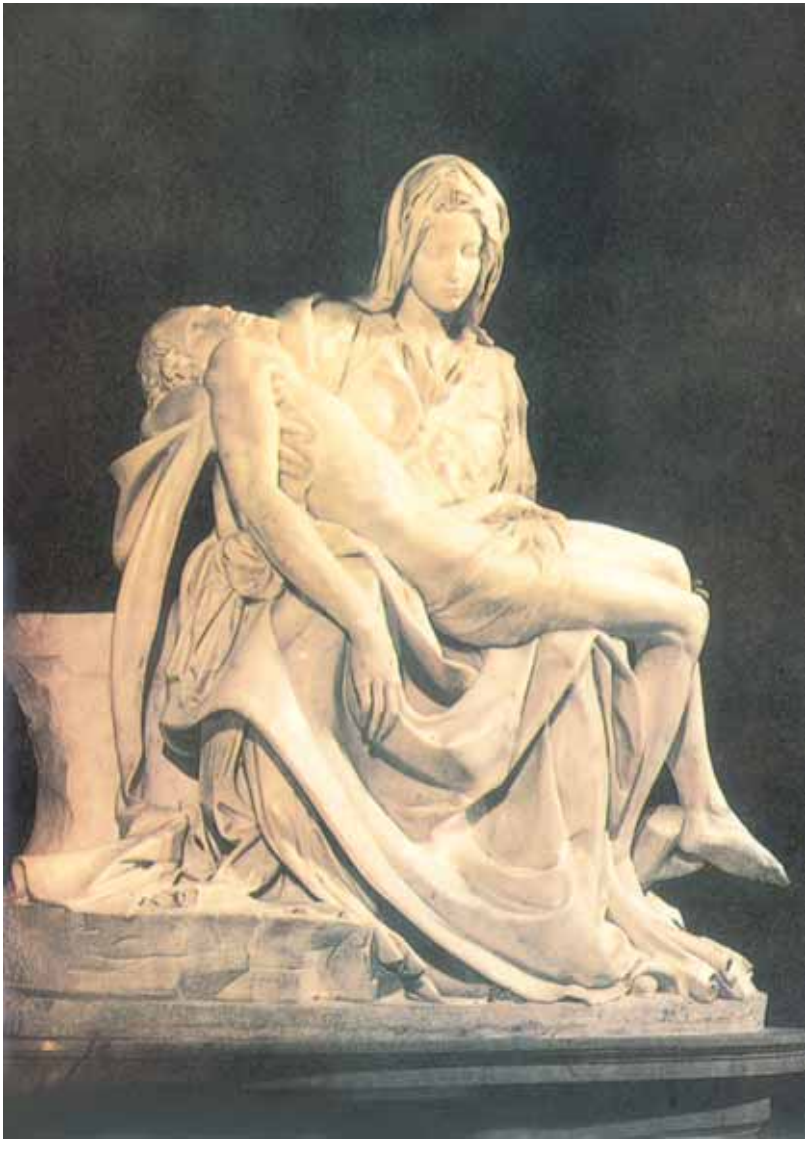

16
माँ की ओर देखो

जिस धर्म के बारे में कहा जाता है,
वह परमात्मा का धर्म नहीं है।
जो नाम दिये जाते हैं,
वे परम के नाम नहीं हैं।
जो अनाम है, वही स्वर्ग और धरती का उद्गम है,
तथा जिसे नाम दिया गया है, वही सबकी माँ है।

-लाओत्से

ब्रह्मांड दर ब्रह्मांड लगातार जन्म दे रहा है। हर 'कारण' जन्म देने वाली माँ है और उसका 'परिणाम' (फल) 'बालक' है। जब फल का जन्म होता है, तब वह एक दूसरे कारण द्वारा गर्भ धारण कर, एक आश्चर्यजनक माँ और बच्चे के कारण को जन्म देता है। जिस तरह से विज्ञान DNA (Deoxyribonucleic acid) की संरचना का आशय निकाल रहा है, शायद एक दिन वह 'आदि-माँ' (primordial mother) और उसके बालक के बीच के गुप्त संबंध के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। परन्तु आदि माँ का शरीर तो चैतन्य-लहरियों से बना है। अत: उनके वंशाणुओं (genes) के बारे में जानने के लिए वैज्ञानिको को चैतन्य-लहरियों के DNA को जानना होगा। फिर कैन्सर, एड्स तथा अन्य समस्याओं के सामूहिक जींस को जानना मुश्किल नहीं होगा। भाग्यवश श्री माताजी निर्मला देवी ने हमें सहज योग को पराविज्ञान (Meta Science) से आशिर्वादित किया है। इसके अभ्यास से

दूषित कोषिकाओं (cells) के चेतना को बदल कर पुन: सामान्यता में लाया जा सकता है। किसी ने रमणमहर्षि से अपने उद्गम (जन्म-स्थान) की ओर जाने का मार्ग पूछा, तो उन्होंने कहा कि-जिस रास्ते से आए हो उसी ओर वापस चले जाओ। (अर्थात् माँ को जानने के लिए बालक बन जाओ।)

यह 'कारण' और 'परिणाम' की अनंत श्रृंखला है। उसकी जड़ को गर्भ कहा गया है, जो कि आदि माता है, जिसे क्राईस्ट (Christ) ने पवित्र आत्मा (Holy Spirit) कहा है। क्राईस्ट के पहले, वेदों के पहले तथा अपने स्वयं के लिखने-पढ़ने का ज्ञान प्राप्त करने के पहले भी, मनुष्य ने अपनी सहज-बुद्धि द्वारा आदिशक्ति को 'जन्म देने वाली माँ की शक्ति' के रूप में पहचान लिया था। सोन-धाटी (Son Valley) के हाल ही के उत्खनन से पता चलता है कि ३०,००० वर्ष पहले, प्राइतिहासिक पत्थर युग में भी उनकी (शक्ति की), पूजा-प्रतिष्ठा की जाती थी (इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.डेरामंड क्लार्क (बर्कले के) और प्रोफेसर जी.आर.शर्मा ने १९८० में मध्य प्रदेष की सोन घाटी में यह उत्खनन (excavation)।

सबसे पहले समुद्र था।
सब कुछ अंधकारमय था।
सूर्य नहीं था, चंद्रमा नहीं था।
लोग नहीं थे, पशु नहीं थे, पेड़-पौधे नहीं थे।
सर्वत्र समुद्र ही समुद्र था,
समुद्र ही 'माँ' थी।
'माँ' कोई मनुष्य नहीं, कोई वस्तु नहीं
कुछ भी नहीं था।
जो कुछ आना (होना) था- उसकी वह, आत्मा थी।

और वह विचार और स्मृति के रूप में थी।

-कोगुई पुराण-कोलंबिया

शुरू में, हम अपनी माँ के गर्भ से आते हैं और अंत में हम धरती माँ के गर्भ में चले जाते हैं। इनकी सत्यता (माँ और धरती माँ की) के अर्थ को जाने बिना व्यक्ति की आध्यात्मिकता अधूरी रह जाती है। वैज्ञानिकों का यह दावा करना आश्चर्य की बात नहीं है, कि उन्होंने हमारे सभी के एकमात्र पूर्वज के बारे में, जानकारी हासिल कर ली है। वह 'माँ' ही थी जो २००,००० वर्ष पहले रहती थी तथा जिसने फैलने वाले वंशाणुओं को छोड़ दिया था, जिसे सभी मनुष्य जातियों द्वारा, वहन किया गया या लाया गया।

निस्सन्देह परमेश्वर (खुदा) एक है। फिर भी, वह दो रूपों में अपने आपको ढाल लेता है, जिसमें एक 'कर्ता' और दूसरा 'अकर्ता' के रूप में होता है। उनका कर्ता-रूप सृष्टि का गर्भ है। यह ज्ञान, मनुष्य की अव्यक्त चेतना (अचेतन) की गहराई में दबा हुआ है। इतिहास के अल्प क्षणों में इसका ज्ञान मनुष्य की चेतना में हुआ। जबकि हिन्दू लोग हमेशा देवी को 'माँ' के रूप में पूजते थे। ग्रीक लोग उसे 'देवी एथिना' के नाम से पूजते थे। ''माता मेरी'' उसी मान्यता की कड़ी हैं।

१५ वीं शताब्दी के अंत तक मेडोन्ना सर्वत्र प्रकट हो गई। एक प्रख्यात क्रांति हुई, जिसमें ''क्राँरी मेरी'' (Virgin Mary) को स्वास्थ्य प्रदान करने वाली, प्रेम, उदारता और करुणा की मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया, जैसा कि एक इतिहासकार ने वर्णन किया है। उसके मानने वाले लोगों ने 'क्राँरी' (virgin) को अपने सर्वोच्च भावनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित किया तथा पवित्र तीन पुरुष देवताओं के संयोग (त्रिदेव) से भी बढ़कर पवित्र माना। 'मेरी' की इस नई मान्यता की सीख, (gospel) हर प्राचीन जर्मन जातीय चर्च

(Gothic Cathedral) में उत्कीर्ण (carved) की गई जो 'हमारी महिला' की पवित्रता का प्रतीक बना। इस विचारधारा ने समस्त पश्चिमी ईसाई समुदाय पर धाक जमा ली, जिससे चर्च को विवश होकर उसे (virgin) की पवित्रता के पद पर आसीन करना पड़ा। 'क्वाँरी' (virgin) के जीवन पर उत्सव मनाने के लिए बड़े-बड़े त्यौहारों का आयोजन किया गया। चूँकि इससे चर्च संस्था के अस्तित्व का ही डर हुआ, तो चर्च के फादर लोग, बारंबार इसकी शान को मिटाने के लिए कोशिश करते रहे।

'सर्वमंगला का प्रतीक मेरी'

जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना और अधिक सूक्ष्मतापूर्ण विचारों के क्षेत्र में पहुँची, वह ताओ की मानने वालों की विचारधारा यीन (Yin) और यांग (Yang) से जुड़ गई जिससे हाल ही में ''नारीत्व के सिद्धांत'' का प्रतिपादन हुआ।

कभी-कभी निराकार को भी, सत्य की पहचान करने के लिए या कुछ कार्यों को पूरा करने के लिए आकार (रूप) धारण करना पड़ता है। इसमें आश्चर्य की कोई ऐसी बात नहीं है कि लाखों की संख्या में हिन्दू लोग सीता, राधा या पश्चिम में 'मदर मेरी' को नारीत्व के सिद्धांत का प्रतीक मानकर उनकी पूजा करते हैं।

यह भी संभव है कि इसी सिद्धांत ने हमारे बीच पुनः अपने आपको प्रकट किया हो, जैसा कि इतिहास अपने आपको दुहराता है। क्राईस्ट के इस कथन का क्या अर्थ है - ''मैं तुम्हारे पास एक परामर्शदाता, शांतिदाता और मोक्षदाता को भेजूँगा; पवित्र आत्मा आपको सब बातों के बारे में उपदेश देगी।'' आइये, अगले अध्याय में कुछ संकेतों और भविष्यवाणियों के प्रकाश में, इस संभावना की खोज करें।

17
उपसंहार

ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व, संकट की घड़ी में, धर्म की रक्षा करने के लिए, इस धरती पर भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

''जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है तब-तब इस धरा पर मैं जन्म धारण करता हूँ।'' और वास्तव में दो हजार वर्ष पहले अंधकार (अज्ञान) के युग में मानव-जाति की रक्षा के लिए क्राईस्ट (यीशु-मसीह) का जन्म हुआ। उन्होंने भी कहा-

''मैं अपने पिता (परमात्मा) से प्रार्थना करूँगा, और वे आपको एक और शांतिदूत (मसीहा) भेजेंगे, जो हमेशा आपके साथ रहेंगे।''

हर आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति इस तथ्य का साक्षी हो सकता है कि परमात्मा हम सबके अन्दर आत्मा रूप में निवास करते हैं (यद्यपि जागरण के पहले आत्मा मानव चेतना में नहीं होता परन्तु कुंडलिनी जागरण के बाद शरीर में परम चैतन्य के बहाव से आत्मा के कारण साधक चैतन्य लहरियाँ हाथ, तालू पर महसूस करता है और आत्मा मानव चेतना में आ जाता है। इससे वह दूसरे के चक्रों की दशा अपने शरीर में महसूस करने लगता हैं, जो दर्शाता है कि मानव चेतना सर्वव्यापी हो जाती है। अत: सहजयोग के आविष्कार से यह साबित हो जाता है कि हर आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति, सामूहिक चेतना (परमात्मा) का अंग प्रत्यंग बन जाता है, जो एक आध्यात्मिक सत्य है। यही (योग) संबंध ही वास्त में इसाइयों का बपतिस्मा (Baptism), हिन्दू दर्षनशास्त्र का 'द्विज' होना या दूसरा जन्म होना है जिसके बारे में क्राइस्ट ने

भी कहा है और जिसे कुरान शरीफ में कयामत के दिन (day of resurrection) के नाम से बताया गया है।

''उन्होंने (अल्लाह, परमात्मा या गॉड ऑल माईटी) आपको एक आत्मा के रूप में बनाया है और एक आत्मा के समान आपको पुन: जीवन देंगे (३१:२८)। अनंत जीवन में सामूहिक-चेतना के सिवाय यह और कौन हो सकता है?''

''उस दिन (कयामत के दिन) उनके मुँह बंद हो जाएंगे और तब उनके हाथ बोलेंगे और उनके पैर खासतौर पर उनके दुष्कर्मों का सबूत देंगे।'' (३६:६३) इस प्रकार मूक-भाषा में प्रकंपनात्मक चेतना (vibratory awareness) के बारे में वर्णन किया गया है। यह प्रकंपनात्मक चेतना हमारे शरीर के अंगों के छोरों से, सूक्ष्म या मौन की भाषा में, बाहर की ओर प्रेषित की जाती है।

''हर इंसान का भाग्य उसके मस्तिश्क में लिखा है। कयामत के दिन उनसे प्रत्यक्ष में स्पष्ट से कहा जाएगा-

''यही आपका ग्रंथ या कुरान है, इसी को पढ़िये।''

''उस दिन (कयामत के दिन) आपकी रूह (आत्मा) स्वयं आपसे कैफियत (हिसाब) मांगेगी'' (१७:१२)- यह बाताता है कि कुंडलिनी स्वयं अपना इतिहास (हिसाब-किताब) लिखती है और हमने स्वयं अपने प्रति जो अपराध किए हैं उनके नतीजे (निशान) आगे साथ लेकर चलती है।

प्राचीन काल से ही ज्ञानी, भविष्य द्रष्टा और शियों द्वारा, आधुनिक युग में घटने वाली इस आध्यात्मिक सत्य की घटना की भविष्यवाणी की गई थी। अमेरिका में जीन डीक्सन (Jeanne Dixon) ने आने वाले अवतार (परमात्मा

की शक्ति) के जन्म धारण के समय की भविष्यवाणी लगभग सन् १९२४ के आस-पास बताई थी। (श्री माताजी निर्मला देवी का जन्म सन् १९२३ में २१ मार्च को हुआ।) इंग्लैण्ड में विलियम ब्लेक ने अपनी कविताओं में बहुत स्पष्ट रूप में, आने वाले युग के बारे में भविष्यवाणी की है- ''जब परमात्मा के लोग पैगम्बर (prophet) या संत बनेंगे, तो वे लोग दूसरों को भी पैगम्बर (संत) बनायेंगे'' (वे आज के सहजयोगी हैं, जो दूसरों के अंदर गुरुतत्व की जागृति कर रहे हैं)। इंग्लैण्ड में कई स्थान ऐसे हैं, जो सहजयोग के विकास से बहुत निकटता से जुड़े हुए हैं, जिनके बारे में विलियम ब्लेक ने खासतौर पर कहा है- जैसे लंबेथ की घाटी, जहाँ पहले आश्रम की स्थापना की गई। और दूसरे मुहल्ले हैं, जो श्री माताजी के विभिन्न निवास स्थानों से जुड़े हुए हैं।

प्राचीन काल के ग्रंथ रचनाकारों (ग्रंथ-रचयिता) में, जिन्होंने ज्योतिष विज्ञान द्वारा भविष्यवाणी की थी, उनमें भृगु ऋषि सबसे प्रमुख गुरु (शिक्षक) थे, जो २००० वर्ष पूर्व हुए थे। उनके दो महान ग्रंथ 'भृगु संहिता' और 'नाड़ी ग्रंथ' हैं, जो कमल के पत्तों पर लिखे गए थे। उनमें मानव-जाति की भाग्य रेखा (horoscope) लिखी गई है इसमें क्रमशः जन्म के समय नक्षत्र-तारों के योग और क्रमपरिवर्तन के अनुसार मनुष्य की जन्मकुंडली और आध्यात्मिक महत्त्व की भावी घटनाओं का वर्णन है। वर्तमान में, जबकि बहुत से लोग उस नए युग की अभी-अभी खोज कर रहे हैं, बहुत से लोग स्वप्रमाणित शिक्षक और गुरु बन गए हैं और जिन्होंने साधकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, अनेक प्रकार के आध्यात्मिक व्यापार खोल लिए हैं। यदि हम प्राचीन भविष्यवाणियों की तुलना आज की सच्चाई के साथ करें तो, इससे हमारी जानकारी में सहायता मिलेगी। इस प्रकार हम उस अवतार को जान सकेंगे, जिसके बारे में लार्ड जीज़स क्राईस्ट (यीशु-मसीह) ने, मोक्ष देने वाला (redeemer) सलाहाकार (counsellor) और शांति देने वाला (comforter)

महापुरूष कहा है, जो सबमें पाप-पुण्य और न्याय के बारे में आदेश देंगे। कई लोगों ने भविष्यवाणी की है कि ''यह अवतार'' एक महिला के रूप में होगा, जो पवित्र आत्मा (holy ghost) या भारतीय परम्परा में चर्चित 'आदिशक्ति' का स्वरूप होगा।

ये प्राचीन रचनाएँ, सबूतों से भरी पड़ी हैं, जो श्री माताजी निर्मला देवी के अवतार के बारे में बताती हैं, कि वे ही इस आधुनिक युग (कलियुग) में मानवता की एकमात्र रक्षक हैं। उनका व्यक्तित्व, उनके उपदेश और उनकी निर्मला-विद्या (सहजयोग) जिसकी वे शिक्षा देती हैं, वे सब इन प्राचीन भविष्यवाणियों की पूर्ति के लिए है। उनमें से जो सबसे स्पष्ट है, वह है भृगु जी का 'नाड़ी-ग्रंथ', जिसका संपादन मराठी भाषा की व्याख्या के साथ ३०० वर्ष पहले एक अन्य ऋषि भुजन्दर जी द्वारा किया गया था।

'नाड़ी-ग्रंथ' के अनुसार कहा गया है कि, सन् १९७० में, मानवी-चेतना में एक नया परिर्वतन आएगा (इसका संस्कृत शब्द 'मवंतर' है)। वैवस्वत (कलियुग के पूर्व की अवधि) और कलियुग का अंत हो जाएगा। तब मनुष्य अपनी सर्वोच्च शक्ति (आत्मा का बल) के साथ राज्य करेगा। सन् १९२२ में एक योगी (वेंकटस्वामी) के मरणोपरांत, एक महायोगी का जन्म होगा। यह महायोगी पवित्र आत्मा (holy spirit) का अवतार होगा जिसमें परब्रह्म परमात्मा (God Almighty) की सभी शक्तियाँ विद्यमान होंगी अर्थात् वह वही होगी जो सभी दैवी शक्तियों का नियंत्रण करती हैं। उस योगी के पास शक्ति उसकी इच्छा के अनुसार होगी, वह चाहे तो कुछ भी कर सकेगी और नहीं भी करेगी। पिछले जमाने में, सत्य की खोज करने वाले साधकगणों को भक्ति, ज्ञान और पातांजलि योग और इन जैसे अनेक तरीके अपनाने पड़ते थे तथा अपने आपको कड़े अनुशासन में ढालना पड़ता था, ताकि उन्हें मोक्ष का आनंद प्राप्त हो सके। इस प्रकार वे अपने हृदय से इच्छित

जीवन के कर्तव्यों (इतिकर्तव्य) का फल पा सकते थे तथा अपने हृदय का अर्थ जान सकते थे। उन दिनों व्यक्ति को बड़ी कठिन तपस्या करनी पड़ती थी, जिससे वे अपने भीतर कुंडलिनी की आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत् कर सकें और उसे विभिन्न सूक्ष्म केन्द्रों से होकर ऊपर उठा सके। परन्तु इस महायोगी द्वारा प्रतिपादित अभूतपूर्व पद्धति से साधकगण अपने जीवनकाल में ही मोक्ष का आनंद सहज में ले सकेंगे और वे लोग कुंडलिनी के उत्थान को देख सकेंगे या अनुभव कर सकेंगे (भुजन्दर जी की मराठी व्याख्या में कहावत है-''ह्याची देही, ह्याची डोळा'')। समाधि में रहकर, शरीर को त्यागने की आवश्यकता नहीं होगी (समाधि, एक मुद्रा है, जिसमें योगी अपने आपको गुफा में बंद कर ध्यान करते हुए प्राण त्याग देता थे)। परन्तु इस योग (सहजयोग) की क्षमता से व्यक्ति मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेगा। शरीर का त्याग करने की न तो आवश्यकता होगी और न ही पुनर्जन्म के बारे में सोचने की। इस योग से आत्मसाक्षात्कारी सहजयोगीजन, भोजन, वस्त्र और आवास के लिए चिंतित नहीं रहेंगे। बीमारियाँ तथा मानसिक दुर्बलताएँ पूरी तरह से नष्ट हो जायेंगी और ऐसे (योगी) लोगों को अस्पताल जैसी संस्थाओं की और जरूरत नहीं होगी। उनमें सूक्ष्म-शरीर के विकास की शक्ति होगी तथा और अन्य प्रकार की शक्तियाँ उनमें होगी.....

श्री माताजी निर्मला देवी के जीवन के कार्यों में ये सब भविष्यवाणियाँ पूरी हो गई हैं। उनका जन्म, भारतवर्ष के मध्य में स्थित छिन्दवाड़ा नामक रमणीय, पर्वतीय स्थल पर २१ मार्च १९२३ के ठीक १२ बजे दिन को हुआ। यह मुहूर्त वसन्त-ऋतु का मध्यकाल था, जिसमें रात और दिन ठीक बराबर होते हैं। ५ मई १९७० से श्री माता जी ने सहजयोग की पद्धति का ज्ञान, लोगों को दिया, जिसके जरिये बिना परिश्रम किए, बिना तपस्या किए, या बिना व्रत (उपवास) किए, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।

साधक को उसके लिए अपने आप प्राण त्यागने की आवश्यकता नहीं। व्यक्ति (साधक) में, साक्षीस्वरूप होकर आत्मा जाग्रत् हो जाती है, और वह अपनी भूख (सांसारिक कामनाओं) पर, निर्लिप्त होकर विजय प्राप्त करता है।

अब तक हजारों इंसानों ने कुंडलिनी के जागरण का अनुभव किया है तथा उन्होंने विभिन्न चक्रों पर कुंडलिनी को प्रकंपित होते देखा है, जब श्री माताजी (या कोई सहजयोगी) सात चक्रों पर इस रहस्यमयी शक्ति को जाग्रत् करती हैं।

मनोविज्ञानी सी.जी.जंग (C.G.Jung) ने सामूहिक-अचेतन (collective unconscious) जो हर इंसान में व्याप्त है, तथा जिसकी झलक स्वयं उसने, अपने स्वप्नों और अपने अंतरतम में तथा अपने मरीजों में देखी थी, उसके बारे में कहा है। वे यह जानते थे और उसके बारे में शिक्षा देते थे कि इस सामूहिक-अचेतन के प्रदेश में केवल, आत्मसाक्षात्कार के परिपक्व प्रक्रियाओं द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। इस दौरान, भ्रम तथा कल्पनाओं को दूर फेंक देना चाहिए, क्योंकि वे सामूहिक सत्य को ढँक देते हैं तथा इस नई चेतना की जागृति से सामूहिक-चेतना का जो अनुभव होता है, उसमें बाधा डालते हैं।

सहजयोगी जानते हैं कि कुंडलिनी अपने स्वयं के इतिहास (पूर्व घटनाओं) को किस प्रकार चित्रित करती है तथा हमने अपने पर जो चोट किये हैं उनके निशानों (scars) को अपने साथ लेकर चलती है (अर्थात् हमारे अनुभवों को समेट कर अपने साथ ले जाती है)। आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् यह सब ज्ञान, एक खुली किताब के समान हो जाता है तथा यह मरीज के स्वास्थ्य-लाभ में बड़ा सहायक होता है।

यह भी सत्य है कि, व्यक्ति अपने आत्मसाक्षात्कार में जम जाने के बाद, दूसरों को भी आत्मसाक्षात्कार दे सकता है और उसी प्रकार उसकी भौतिक समस्याएँ जैसे-भोजन, आवास आदि सभी, चमत्कारिक रूप से सुलझ जाती हैं। हमनें इन्हें देखा और अनुभव भी किया है। यह एक सत्य है (अब व्यक्ति निर्भय हो कर जीवल यापन कर सकता है और दूसरों को भी इसका बोध करा सकता है)

यह (सामूहिक) चेतना, संतुलित करती है; समस्याओं को सुलझाती है; मनुष्य के दु:ख को दूर करती है; तथा मानवता को दिव्य से जोड़ती है। इसकी प्राप्ति केवल कुंडलिनी-जागृति से हो सकती है, न कि उसके बारे में वार्तालाप (वाद-विवाद) करने से और न ही बौद्धिकता, तार्किकता या दार्शनिकता से। यह स्वभाविक सहज तथा जीवंत घटना है, तथा व्यक्ति के बिना प्रयास के, घटित होती है। यदि किसी चीज़ की आवश्यकता है तो, वह है व्यक्ति की शुद्ध-इच्छा (यह वास्तव में जीते जी मनुष्य का, दूसरा जन्म, पुनर्जन्म है)।

चैतन्य का ज्ञान, परम ज्ञान है। श्री माताजी स्वयं किसी किताब से कोई परामर्श नहीं लेती परन्तु हर विषय पर आश्चर्यजनक गहनता से सहज-ज्ञान का प्रकाश डालती हैं। श्री माताजी निर्मला देवी का सहजयोग वास्तव में बुद्धि से परे की चीज है-वह एक बीज के अंकुरित होने के समान है, जो बाद में बड़ा वृक्ष बन जाता है- उसकी आप व्याख्या नहीं कर सकते। अब आपको यह घोषित करना है कि यह ज्ञान (सहजयोग) प्राचीन समय में की गई भविष्यवाणियों की पूर्ति है। यह आधुनिक युग का रहस्योद्घाटन तथा एक वसीयत है।

यह सत्य के नए युग का प्रारंभ है। आइये, आज हम उन यातनाओं को

भूल जायें, जिन्हें भूतकाल में हमने सत्य की खोज में झेला था। हमें इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिए कि, कोई व्यक्ति इससे पहले, इसकी खोज क्यों नहीं कर सका। हमें अपना दिमाग खुला रखना है और समझना है कि यद्यपि यह खोज अभूतपूर्व है, फिर भी इससे कोई भी साधक या उसका पूर्वज छोटा नहीं बन जाता है। यदि कुछ और प्रयोग किए गए हैं, तो भी कोई बात नहीं। अंततोगत्वा हमें जो चाहिए, वह मिल गया है। यह सामूहिक उपलब्धि है। (अनंत काल के खोजी को अपना संपूर्ण मिल गया है जिसकी छत्र छाया में निर्भय हो कर जीवन बिता सकता है)''। शायद आज के ही उपद्रवग्रस्त एवं भ्रामक परिस्थिति में ही इसे होना था तथा अनेक जीव जो अनेक जन्मों से उत्सुकतापूर्वक खोज रहे थे, वे आज पुनर्जन्म ले रहे हैं, इस प्रकार दिव्य (divine) शक्ति द्वारा, दिये गए उनके वचनों को, निभाया जा रहा है। हो सकता है कि (पिछले जन्मों में) हम अपने ही पूर्वज रहे हों। साधक को अब अपना सामना स्वयं ईमानदारी से करना है ताकि वह, अपने संस्कारों से लोहा ले सके और भूत या बीती हुई बातों से अपने आपको अलग करके सबसे अधिक कीमती या सार्थक वस्तु को पाने की शक्ति प्राप्त कर सके।

'सहज' का दूसरा अर्थ 'जन्मजात' भी है। हम सबमें आत्मा बनने की वही अंत: क्षमता है और अब समय आ गया है कि इस क्षमता को हम यथार्थ सत्य में बदलें। यह एक सीधा तथा व्योहारिक पहुँच-मार्ग है। मन के किसी खेल या मनोरथ (मानसिक गतिविधि) को यह अस्वीकार करता है। कठोरता, धर्मान्धता और तपस्विता या किसी प्रकार के 'बाद' को यह नहीं मानता। हर व्यक्ति स्वयं अपना सम्मान करे और अपनी रोजी-रोटी स्वयं कमाए, किसी दूसरे पर या समाज पर निर्भर रह कर न जीये। विवाह एक पवित्र बंधन है, जो दो व्यक्तियों (पति और पत्नी) की आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है तथा जो समाज की नींव है। आध्यात्मिक माता-पिता

की संतान आने वाले सत्ययुग के महान आत्मा होंगे। एक ''माँ'' ने बड़े प्यार से अपने बालकों (साधकों) के लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार किया है, अत: हम उसका आनंद लें और उसकी रचना का उत्सव मनायें।

सभी महान अवतारों का आदर तथा उनके तत्वों के ज्ञान का आदर (सहजयोग में) किया जाता है । फिर भी, किसी एक खास अवतार को ही सब-कुछ समझ कर उसे सख्ती से मानें और अन्य सबका तिरस्कार करें, तो दिव्य के संपूर्ण (समग्र) ज्ञान की प्राप्ति के बदले हम अंधकार में पड़ सकते हैं। हर अवतार ने दिव्य (divine) के एक विशेष पक्ष को उजागर किया है तथा मानव (आत्मा) के उत्थान के लिए एक-एक सीढ़ी का योगदान दिया है। अत: किसी एक या दूसरी सीढ़ी पर खड़े हो जाने से, व्यक्ति एक अलग द्वीप में अकेले रहने के समान है। दिव्य का अनुभव केवल सामूहिक-चेतना में ही हो सकता है और उसमें, व्यक्तिगत धारणाओं, धर्मावलंबियों, धार्मिक मतों और अहंकार की कोई गुंजाइश नहीं है।

मनुष्य की प्रार्थना के उत्तर में, अपनी आत्मा को जानने का यह महान अवसर आया है। अब किसी भी ग्रंथ को कंठस्थ करने की जरूरत नहीं। किसी धर्मोपदेश को सीखने की आवश्यकता नहीं, दान करने की जरूरत नहीं तथा पहाड़ को लांघने की जरूरत नहीं, किसी से दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं। यह सब अब सहज और स्वाभाविक है क्योंकि फुलने-फलने का समय आ गया है और एक माँ, अपने सब बालकों को प्रेम, आनंद और करुणा से आत्मसाक्षात्कार प्रदान कर रही है।

आप में पवित्र आत्मा की जागृति होगी
और जो सर्वशक्तिमान है, उसकी शक्ति
आपको प्रकाशित कर देगी। लूक I : ३५

सत्य की खोज कैसे करें।

''सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम 'सत्य' का निर्माण नहीं कर सकते, हम सत्य को संगठित नहीं कर सकते। सत्य है, था और रहेगा। हम सत्य को धोखा नहीं दे सकते, ठग नहीं सकते। हमें उस बिन्दु तक पहुँचना है, जहाँ हम उसे पा सकें। यह मानसिक उपलब्धि नहीं है। यह धारणा नहीं है। इसे हम बदल नहीं सकते। 'सहजयोग' सत्य को प्रमाणित करता है और आपको इस योग्य बनाता है कि आप उसका अनुभव कर सकें। जहाँ साधक (सत्य को खोजने वाले) गुमराह हुए हैं, उसके परिणाम, बड़े विनाशकारी सिद्ध हुए हैं।''

श्री माताजी

अधिकांश मनोविज्ञानी, आध्यात्मिक और अतिचेतना के समूह नशीली औषधियों के समान हैं। वे साधकों को फुसलाते हैं और अपने जाल में फँसाते हैं। वे धूर्त, कपटी और धोखेबाज हैं। उनसे होने वाले खतरे तब साफ नजर आते हैं, जब बहुत देर हो चुकी होती है।

हर वस्तु जो अनित्य (क्षणिक) है, वह सत्य नहीं हो सकती; और सभी शक्तियाँ मनुष्य को सत्य के मार्ग पर नहीं ले जातीं। दृष्टि-शक्ति, वाणी-सिद्धि, नक्षत्रीय गणना, प्रकाश (तेज) की धारियां, प्रेत-शक्ति के वाहन का कार्य, भविष्यवाणी करना, मृतात्माओं से संपर्क करना और हठयोग आदि सभी सम्भव हैं, परन्तु वे हमें सत्य तक नहीं पहुँचा सकते। वे हमें क्षणिक शक्ति देते हैं, तथा हमारे अहंकार को हवा देते हैं कि हम कोई विशेष व्यक्ति हैं। परन्तु ये सब शक्तियाँ शीघ्र ही क्षीण हो जाती है और बीमारी, तकलीफ और उदासीनता पैदा करती हैं। वे प्रेत-बाधा को स्पष्ट रूप से आमंत्रित करती हैं। वे धोखा या भ्रम पैदा करते हैं- यदि वे हमारी वास्तविक खोज की

प्रवृत्ति को नष्ट नहीं कर सकते तो भी, हमें भ्रम में रखते हैं। कुछ समुदाय के लोग, हमसे पैसा ऐंठने के चक्कर में रहते हैं। कुछ हमारी आत्मा को नष्ट करने पर तुले हैं और कुछ हमें केवल अपने साथ नर्क ले जाना चाहते हैं। (आत्मा के पतन, उसका परमात्मा से मिलने का अवसर समाप्त हो जाता है)

गुरु का चुनाव करते समय या अपने आपको किसी समुदाय में शामिल करते समय, अपने आपसे निम्नलिखित प्रश्न पूछ लेने चाहिए। -

१. क्या किसी समय धन (रुपया-पैसा) लिया जाता है ?- सत्य को कोई अपने अधिकार में नहीं ले सकता, सत्य को खरीदा या बेचा नहीं जा सकता।

२. क्या शिक्षक (गुरु) दुकानदार के समान दबाव डालता है?- व्यक्ति को अपने लक्ष्य की कीमत अपनी खुद की समझदारी से जान लेनी चाहिए; न कि पड़ी गई किताबों से, कक्षाओं में उपस्थिति या की गई प्रतिज्ञाओं से। सत्य दुकानदारी पर निर्भर नहीं होता।

३. क्या हम स्वयं, उनकी पद्धति का लाभ अनुभव उठा सकते हैं?- आपको उनके झूठे आश्वासनों से संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि भविष्य में किसी समय आप उनकी आंतरिक परिधि में महत्त्वपूर्ण स्थान पा लेंगे।

४. क्या वे, अपने अनुयायियों को, अजीब किस्म के पहनावे पहनने के लिए कहते हैं, विचित्र मुद्रा में बैठने या जोर-जोर से चिल्लाकार कीर्तन करने के लिए कहते हैं?- सत्य ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त करने के लिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़े। वह तो हमारी इच्छा की पवित्रता है, जिसका महत्त्व है, न कि उनके तरीकों की कठोरता।

५. क्या यह संतुलित मार्ग है, जिसका अनुसरण ऋषि-मुनि, योगी और

महात्मा लोग भूतकाल में करते थे? क्या वह हमें अवचेतना या अधिचेतना के भयंकर अनुभवों की ओर ले जायेगा ?

६. क्या उनके संगठन के सदस्यों, गुरु या नेता लोगों पर आम जनता का विश्वास है? क्या हम उनके साथ शांति से रह सकते हैं? क्या वे प्रेम और आनंद का व्यवहार करते हैं? क्या उनके प्रेम की गर्माहट सच्ची है? क्या वे जो कुछ शिक्षा दे रहे हैं, उनका वे खुद पालन करते हैं?

७. क्या वहाँ हर सदस्य को स्वतंत्रता है, कि वह जब चाहे तो छोड़ कर जा सकता है या उसे जारी रख सकता है?- अपने हृदय के अनुसार करो, न कि अपने अहं के अनुसार। यदि किसी प्रकार का भय या संदेह (अविश्वास) है, तो उस पर ध्यान दो। यदि आप संदेह या तकलीफ में हैं, तो उसे छोड़ दो। उन्हें अपने आपको सताने न दो।

८. क्या कोई ऐसा तरीका है, जिससे उनकी तकनीक (पद्धति) की जाँच की जा सके ?- जो भी घटना होती है, उसके सैद्धांतिक कार्यों को, निश्चित रूप से जाना जा सके।

हाँ, जीवन की अपनी समस्या है, उसमें उतार और चढ़ाव हैं जैसे दु:ख-दर्द सहना और पिछड़ जाना। परन्तु यदि हम भी दुखी हो जायें, तो केवल दु:ख-दर्द ही लगातार हमारे साथ चलता रहेगा। हमें कम दुर्भाग्य की गलत धारणा में नहीं पड़ना चाहिए। हमें अपनी सकारत्मकता से अपनी दुर्गति को दूर करना चाहिए। जब काले बादल छाये हों, तो हमें प्रकाश की चमकीली रेखाओं की ओर देखना चाहिए। जब हम कीचड़ में हैं, तो हमें कमल की ओर देखना चाहिए, जो उस कीचड़ में खिलते हैं। आइये, हम सबसे प्रिय, मातृप्रेम की शक्ति की मधुर लीला का आनंद लें, जो बालकों (साधकों) पर निरंतर प्रेम और करुणा की वर्षा करती है; जो साधकों को विकास के अनेक

आयामों से गुजार कर आध्यात्मिक उपलब्धि और परमात्मा की प्राप्ति के लिए ले जा रही है (वास्तव में, जीवन में बहुत कुछ है, जिसे प्रेमपूर्वक बाँटा जा सकता है। आइये, हम उनकी अनुकंपा का आनंद लें, और प्रभु का धन्यवाद करें)।

वास्तव में जीवन ईश्वर का एक उपहार है- 'उनके साथ रहने का एक मार्ग' है। आइये, हम एक दूसरे का हाथ पकड़ कर इस मार्ग पर बढ़े जिससे चौराहों के इशारों को नहीं चूकेंगे। अंधे लोग गूँगे की आखों से देख सकेंगे और बहरे लोग अंधों के कान से सुन सकेंगे। अपने जीवन उपहार को बाँटने (एक दूसरे को सहयोग देने) से जीवन यात्रा छोटी पड़ जायेगी।

कुछ परिभाषिक शब्द

आत्मा	स्व	The Self or Spirit
आत्मसाक्षात्कार	आत्मा का अनुभव	Self-realisation
अमरता	अमरत्व, मृत्युविहीनता	Immortality
अंत:करण	हृदय, मन की गहराई	Conscience
अंतर्मुखी	जिसका चित्त भीतर की ओर हो	Introvert
अस्तित्व	स्थित होना	Existence, entity
अटकलबाजी	अनुमान लगाना	Guess work
आकुल	व्याकुल, दु:खी	Perplexed, vexed
हिरण्यवर्णा देवी	-	Golden Goddess
आधारभूत बल	-	Grounding Force
सद्गुण	-	Sterling Quality
सौंदर्य बोध	-	Essence of Aesthetics
अन्हद नाद	-	Unstruck Sound
प्रवेश द्वार	-	Threshold
उपसंहार	-	Epilogue
अनुभूति	अनुभव	Experience
आध्यात्मिक	अध्यात्म या आत्मा संबंधी	Spiritual
अवचेतन	भूतों या मृतकों संबंधी ज्ञान या चेतना का क्षेत्र	Subconscious
अतिचेतन	भविष्य-चिंतन करने वालों की चेतना का क्षेत्र	Supraconscious
अहंकार	घमंड, गर्व, दंभ	Ego
आध्यात्मिक-उत्थान	आत्म-ज्ञान में प्रगति	Ascent

समाधान	हल	Solution of a Problem
समस्या	प्रश्न, पहेली, गुत्थी	Problem
साक्षीस्वरूप	गवाह, दर्शक	Witness
चेतना	होश-हवास	Consciousness
	जीवन का स्फुरण	Awareness
	ज्ञान, समझ-बूझ	Knowledge
चैतन्य	जीवित, सक्रिय,	Living, Dynamic
	जाग्रत् गतिशील	Active
सामूहिक-चेतना	सब की चेतना	Collective
	का मुख्य स्रोत	Consciousness
सामूहिक अचेतन	सामूहिक अचेतन	Collective
	परमात्मा का ज्ञान	Unconsciousness or Super consciousness
सामूहिक	भविष्य की जानकारी	Collective
अतिचेतन	संबंधी क्षेत्र का ज्ञान	Supraconscious
सामूहिक	सभी मृतात्माओं, बीती	Collective
अवचेतन	हुई घटनाओं के समग्र	subconscious
	चेतना का भंडार	
नाड़ी	तंत्रिका-तंत्र	Nerves
बाईं अनुकंपी	बाई अनुकंपी नाड़ी-	Left Sympathetic
तंत्रिका-तंत्र	तंत्र या इड़ा नाडी	nervous system
	या चंद्र-नाड़ी (ठ)	or moon channel (Part of central nervous system)
दाईं अनुकंपी	पिंगला नाड़ी	Right sympathatic
तंत्रिका-तंत्र	या सूर्य नाड़ी (द)	nervous system or sun channel (Part of central nervous system)
मध्य नाड़ी	सुषुम्ना नाड़ी	Parasympathatic
केन्द्रीय तंत्रिका		nervous system (part of

तंत्र		central nervous system)
चक्र	नाड़ी समूहों का केन्द्र या पहिया। शक्ति-केन्द्र	Plexus or wheel
मूलाधार चक्र	कमर के नीचे के अंगों का नाड़ी-केन्द्र	Pelvic Plexus (Prostate gland)
स्वाधिष्ठान-चक्र	कमर के चारों ओर के भागों का नाड़ी-केन्द	Aortic Plexus
नाभि-चक्र (मणिपुर चक्र)	नाभि-भाग का नाड़ी केन्द्र	Solar Plexus
भवसागर	नाभि के चारों ओर की जगह	Void
अनहद (अनाहत) (हृदय) चक्र	छाती के भागों का नाड़ी केन्द्र	Cardiac Plexus
विशुद्धि चक्र	गले के भागों का नाड़ी केन्द्र	Cervical Plexus (Thyroid)
आज्ञा चक्र	मस्तिष्क के भागों का नाड़ी केन्द्र	Crossing of optic Thalamus (Pineal & Pituitary Glands)
सहस्रार चक्र	सिर का नाड़ी केन्द्र, तालुभाग	Limbic Area
योग	मानव चेतना का परमात्मा से मिलन	Union with God at human conscious
दिव्य-शक्ति	मनुष्यों की शक्ति से परे शक्ति	Divine power
विभ्रम	भ्रम, धोखा	Hallucination
परामनोविज्ञान	भूतलोक, परलोक या प्रेतलोक संबंधी ज्ञान	Parapsychology
संतुलन	साम्य	Balance

प्रकृति	स्वभाव (आत्मा का गुण)	Nature
कोशिका	शरीर का सूक्ष्म अंग	Nature
परमात्मा	अल्लाह, खुदा, परमेश्वर	God Almighty, Father
निरंतर	लगातार, अविरल	Continuous, Constant
उद्गम	जन्म-स्थान, स्रोत	Source, Place of birth
प्रकाशित	उज्ज्वल, प्रकाशवान्	Enlightened
प्रेरणा	उत्साह, तीव्र इच्छा	Inspiration
मौलिक	प्रारंभिक, शुरू-शुरू की	Fundamental, basic, rudimentary
तर्क-वितर्क	वाद-विवाद	Debate, Logical discussion
शंका	संदेह	Doubt
निष्कर्ष	नतीजा, फल, परिणाम	Result, conclusion
प्रेत-बाधा, प्रेतावेश	मृतात्मा द्वारा ग्रसित	Spirit possession
प्रेत-सिद्धि	मृतात्माओं को वश में करना और उनसे काम लेना	Psychic Powers
दृष्टि-सिद्धि	अदृश्य या होने वाली घटनाओं को देखने की शक्ति या क्षमता	Clairvoyance
वाणी-सिद्धि	मृतात्माओं की आवाज सुनने की शक्ति।	Clairaudience
दोष-भावना	पश्चात्ताप होना, अपने आपको दोषी मानना	Guilty conscious
वशीभूत होना	किसी के वश में होना, गुलाम या दास बनना	Possessed
नकारात्मकता	उल्टी भावना, विरोधाभास	Negativity
सकारात्मकता	समर्थकता, समान विचार का होना	Positivity

प्रतिग्राहक	पकड़ने वाला, संवेदनशील	Receptor
प्रतिग्राही-कोशिकाएँ	संवेदनशील कोशिकाएँ	Cell-receptors
परजीवी	जो दूसरों के जीवन पर जीता है	Parasites
यू.पी.आई	मृतात्माएँ, प्रेतात्माएँ, भूत-प्रेत, जिन्न आदि	Units of psychic interference
प्रकंपन	आंदोलन, कंपन	Vibrations
आवृत्ति	बारंबारता	Frequency
स्पर्शज्या	स्पर्श करती हुई जाने वाली रेख	Tangent
क्रमचय जोड़	हेर-फेर जोड़	Permutation & combination
अवचेतन मन	-	Psyche
अंतः	गर्भित, क्षमता	Potential

सर्वाधिकार सुरक्षित

बिना पूर्व आज्ञा के इस पुस्तक के किसी भी भाग की प्रतिलिपि या किसी भी रूप में प्रसारण वर्जित है। कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से यदि इसका प्रकाशन करता है तो उस पर हानिपूर्ति का दावा किया जाएगा।

सृजन करने वाली शक्ति से एकाकरिता प्राप्त किये बिना आप अपने जीवन का अर्थ नही जान सकते।

परम पूज्य माताजी
श्री निर्मला देवी
"सहजयोग" संस्थापिका

5 मई 1970 को, परम पूज्य श्री माताजी निर्मला देवी ने संसार के सामने एक विशिष्ट यौगिक–प्रक्रिया का प्रतिपादन किया, जिसे 'सहजयोग' के नाम से जाना जाता है। इस योग के द्वारा मानव, अपने अंदर एक महान परिवर्तन ला सकता है। उसके बाद के वर्षों में सहजयोग का प्रचार और प्रसार असाधारण रूप से हुआ। संसार–भर में हजारों लोगों ने इसे अपनाया और इससे उनके जीवन में आमूल परिवर्तन हुआ। हमारे अंदर स्थित परिवर्तन की शक्ति किस प्रकार कार्य करती है, और किस प्रकार हर इन्सान, अपने सर्वोच्च 'सामूहिक–व्यक्तित्व' अर्थात् परमात्मा को प्राप्त कर सकता है ? 'उत्थान' इन प्रश्नों के समाधान का एक प्रयास है।

निर्मल ट्रान्सफॉर्मेशन प्राइवेट लिमिटेड
"सहजयोग" के बारे में अधिक जानकारी के लिए कृपया www.sahajayoga.org पर हमसे सम्पर्क करें।